* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

गरुड़पर सवार भगवान् विष्णु

सरयूतटपर चारों भाई

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
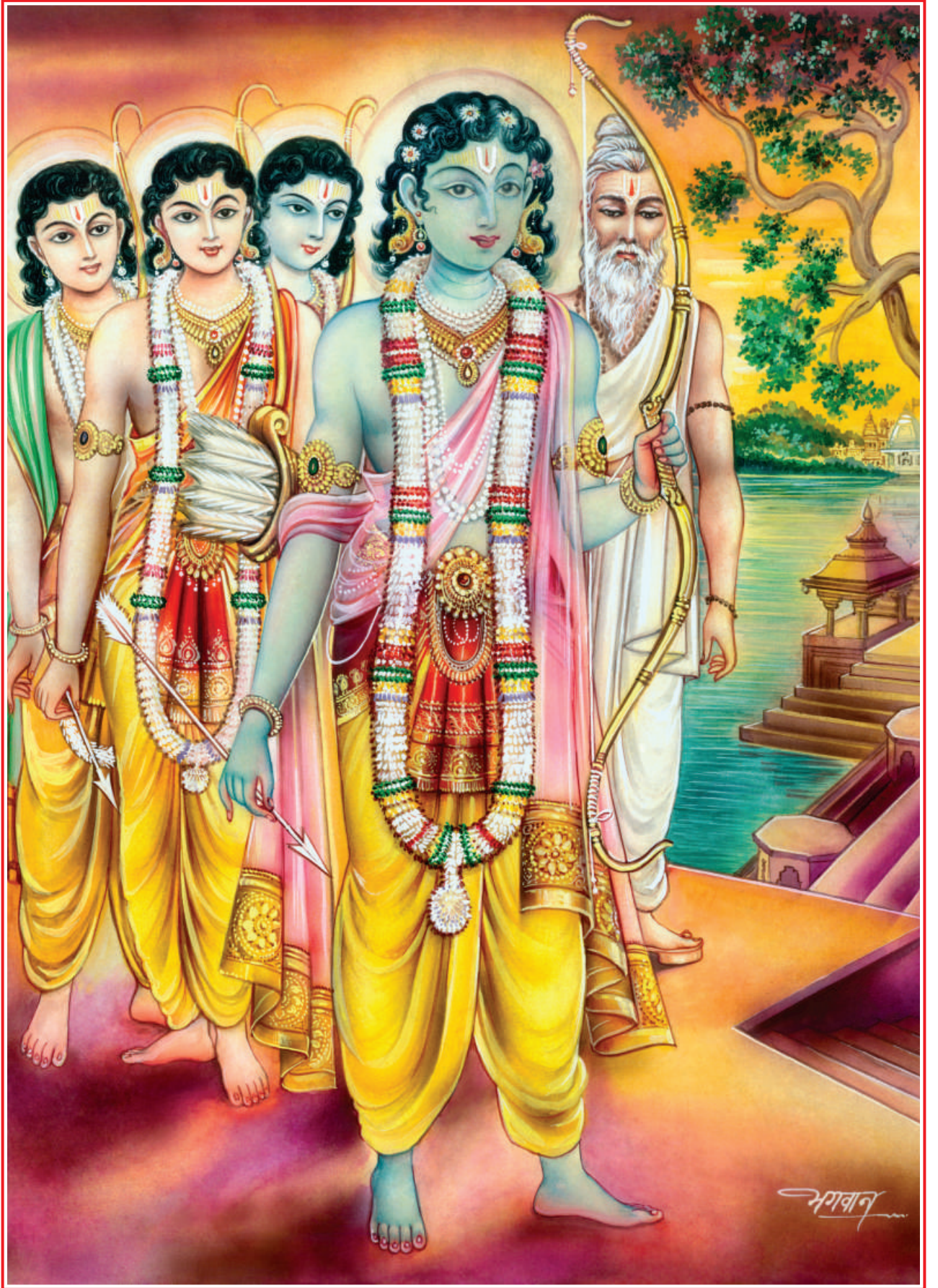
कल्याण

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

वर्ष ९६ | गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, अक्टूबर २०२२ ई० | संख्या १०

पूर्ण संख्या ११५१

सरयूतटपर चारों भाई

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुबीर सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसें कटि पीत दुकूल नवीन फबै॥
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै।
मति भारति पंगु भई जो निहारि बिचारि फिरी उपमा न पबै॥

श्रीरघुनाथजी उनके सखा और सब भाई पवित्र सरयू नदीके किनारे-किनारे घूमते फिरते हैं। उनके हाथमें छोटे-छोटे धनुष-बाण हैं, कमरमें तरकस कसा हुआ है और शरीरपर नूतन पीताम्बर सुशोभित है। तुलसीदासजी कहते हैं श्रीशारदाकी मति उस समयकी सुन्दरताकी उपमा चौदहों भुवन, नवों खण्ड, तीनों लोक और इक्कीसों ब्रह्माण्डोंमें जब विचारपूर्वक खोजनेपर भी नहीं पा सकी, तब कुण्ठित हो गयी। [**कवितावली**]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, अक्टूबर २०२२ ई०, वर्ष ९६—अंक १०

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

चित्र-सूची

एकवर्षीय शुल्क ₹ 500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे

एकवर्षीय शुल्क ₹ 300 मासिक अंक साधारण डाकसे

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंचवर्षीय शुल्क ₹ 2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे

पंचवर्षीय शुल्क ₹ 1500 मासिक अंक साधारण डाकसे

विदेशमें Air Mail शुल्क } वार्षिक US$ 50 (₹4,000) पंचवर्षीय US$ 250 (₹20,000) {Us Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरि: ॥

तेरे भावैं कछु करौ भलो बुरो संसार।
नारायन तू बैठि के अपनौ भवन बुहार॥

संत कवि नारायण स्वामीकी यह उक्ति प्रत्येक सद्‌गृहस्थके लिये आत्मकल्याणके साधनकी असली कुंजी है।

प्राय: गृहस्थ साधकोंका अधिकांश समय अपने घर-गृहस्थी-व्यापारके रोज होनेवाले कामोंमें व्यतीत होता है। उन कार्योंको प्राय: अपने-अपने तरीकेसे सभी सम्पन्न करते हैं। किंतु महत्त्वकी बात यह है कि अपने कर्तव्य-कर्मोंको पूरा करते समय हमारी दृष्टि कहाँ टिकी रहती है। यदि हमने सारा समय इसीमें लगाया कि सामनेवालेने जो उसे करना चाहिये था, किया या नहीं किया; तो वह समय अपने लिये नष्ट ही हुआ। इसमें अपने अहंकारकी तुष्टिके सिवा कुछ लाभ नहीं होनेवाला।

यदि हमें चित्तकी शान्ति और साधनकी प्रगति प्यारी हो, तो यथासम्भव अपना पूरा ध्यान भगवत्कृपासे प्राप्त अपने कर्तव्यपर रखना चाहिये और अपने पूरे मनोयोगसे सम्पन्न करके उसे भगवान्‌को ही समर्पित कर देना चाहिये। फिर वे जानें। सफलता-असफलताका पूरा जिम्मा उनका।

—सम्पादक

हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

***याद रखो*—**पारमार्थिक लाभ ही यथार्थ लाभ है और पारमार्थिक हानि ही यथार्थ हानि है। अत: जहाँ लौकिक लाभ पारमार्थिक लाभका विरोधी हो, वहाँ लौकिक लाभका मोह त्यागकर पारमार्थिक लाभकी रक्षा करनी चाहिये। इसी प्रकार जहाँ पारमार्थिक लाभमें लौकिक हानि हो, वहाँ पारमार्थिक लाभके लिये लौकिक हानिको सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिये।

***याद रखो*—**लौकिक हानि-लाभसे आत्माके पतन-उत्थानका, अपने-आपके बन्धन-मोक्षका कोई सम्बन्ध नहीं है; परंतु पारमार्थिक हानिका तो अर्थ ही है आत्माका पतन, जीवात्माके बन्धनकी और भी दृढ़ता। तथा पारमार्थिक लाभका अर्थ ही है आत्माका उत्थान, जीवात्माकी मुक्तिकी ओर अग्रसरता।

***याद रखो*—**एक आदमीके पास बहुत धन है, बड़ी उसकी प्रतिष्ठा है। जमीन-मकान हैं, पुत्र-पौत्र हैं, पद-अधिकार प्राप्त है—वह सब प्रकारसे सम्पन्न है, लौकिक लाभ उसके चारों ओर व्याप्त है, परंतु इसके बदलेमें उसका मन काम-क्रोधसे, मद-अभिमानसे, तृष्णा-लोभसे, द्वेष-हिंसासे, वैर-विरोधसे, मोह-ममतासे भर गया है और वह ईश्वरको भूलकर केवल विषयभोगोंकी प्राप्ति, रक्षा और भोगके लिये सदैव चिन्तित और निषिद्ध आचरणमें रत है, तो उसका उपर्युक्त लौकिक लाभ उसके किसी कामका नहीं होगा। मरते ही समस्त प्राणि-पदार्थोंसे सम्बन्ध टूट जायगा, सबसे नाता टूट जायगा और उसे बाध्य होकर नरकानलमें दग्ध होना, नारकीय यातना भोगना और फिर बुरी-बुरी दु:खदायिनी योनियोंमें भटकना पड़ेगा। इस प्रकार उसका जीवात्मा—वह पतनके गर्तमें गिर जायगा।

***याद रखो*—**यदि एक मनुष्य संसारकी दृष्टिमें अभावपूर्ण जीवन बिता रहा है; धन-मान, प्रतिष्ठा-प्रशंसा, पुत्र-परिवार, मित्र-सुहृद्, जमीन-मकान, पद-अधिकार—सभीसे वंचित है, बल्कि शरीरनिर्वाहके लिये भी जिसके पास साधन नहीं है, परंतु जिसका हृदय सन्तोष-क्षमा, विनय-विनम्रता, सहिष्णुता-तितिक्षा, प्रेम-सेवा, सुहृदता-सहानुभूति, मैत्री-करुणा, विवेक-वैराग्यसे पूर्ण है, और जो भगवत्प्राप्तिके लक्ष्यसे भगवद्भजन एवं भगवत्सेवाको ही जीवनका स्वरूप मानकर नित्य-निरन्तर भगवत्प्रीतिकारक दैवी गुणोंके अर्जन, रक्षण और आचरणमें लगा हुआ ईश्वरकी ओर बढ़ रहा है, उसका उपर्युक्त लौकिक हानि या लौकिक प्राणि-पदार्थोंके अभावसे कोई सम्बन्ध नहीं है, वह निश्चय ही परम-कल्याणरूप भगवान्‌को प्राप्त करेगा। इस प्रकार उसको मानव-जीवनकी सच्ची सफलता प्राप्त होगी।

***याद रखो*—**मनुष्ययोनि भगवत्प्राप्तिरूप महान् पारमार्थिक लाभके लिये ही प्राप्त हुई है। भगवान्‌की बड़ी कृपासे यह साधनधाम मानव-शरीर मिला है। इसको केवल इसी महान् कार्यकी साधनामें लगाना यथार्थ मानवता है। यदि मानव-शरीरका उपयोग भोग-कामना और भोगोंके भोगमें किया जाय तो वह उसका दुरुपयोग ही है और यदि भोगोंके लिये दुर्गुण, दुर्विचारोंका आश्रय लेकर दूषित कर्म किये जायँ, तब तो मानव-जीवनका महान् दुरुपयोग है; क्योंकि मानव-जीवनमें किये हुए कर्मोंका फल ही जीवको अनन्त लोकों तथा अनन्त योनियोंमें विविध प्रकारसे भोगना पड़ता है।

***याद रखो*—**जीव जबतक मनुष्ययोनिमें नहीं आता, तबतक तो वह अपने पूर्व मानव-जन्मकृत भोगोंको भोगकर कर्म-ऋणसे क्रमश: मुक्त होता रहता है, पर मानव-शरीर प्राप्त करके यदि भगवत्प्राप्तिके साधनमें नहीं लगता और भोग-प्राप्त्यर्थ सत्कर्म करता है, तो उसे जन्म-मरणके चक्रमें पड़े रहकर सत्कर्मोंके फलस्वरूप विविध लोकों तथा योनियोंमें लौकिक सुख मिलता है, भगवत्प्राप्ति नहीं होती। यह उसकी महान् हानि होती है। मानव-जीवनका सुदुर्लभ अवसर हाथसे चला जाता है। और यदि वह मानव-शरीरमें दुष्कर्म करता है, तब तो उसे विविध प्रकारकी भीषण नरकयन्त्रणा और विविध जघन्य योनियोंमें जन्म लेकर अपार कष्ट-भोग करना पड़ता है, इससे अच्छा था कि वह मानव-शरीर ही प्राप्त न करता। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

गरुड़के जन्म और विष्णु-वाहन बननेकी कथा

सत्ययुगकी बात है, दक्षप्रजापतिकी दो कन्याएँ थीं—कद्रू और विनता। उनका विवाह कश्यप ऋषिसे हुआ था। एक बार कश्यप अपनी धर्मपत्नियोंसे प्रसन्न होकर बोले, 'तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो।' कद्रूने कहा, 'एक हजार समान तेजस्वी नाग मेरे पुत्र हों।' विनता बोली, 'तेज, शरीर और बल-विक्रममें कद्रूके पुत्रोंसे श्रेष्ठ केवल दो ही पुत्र मुझे प्राप्त हों।' कश्यपजीने 'एवमस्तु' कहा। दोनों प्रसन्न हो गयीं। सावधानीसे गर्भ-रक्षा करनेकी आज्ञा देकर कश्यपजी वनमें चले गये।

समय आनेपर कद्रूने एक हजार और विनताने दो अण्डे दिये। दासियोंने प्रसन्न होकर गरम बर्तनोंमें उन्हें रख दिया। पाँच सौ वर्ष पूरे होनेपर कद्रूके तो हजार पुत्र निकल आये, परंतु विनताके दो बच्चे नहीं निकले। विनताने अपने हाथों एक अण्डा फोड़ डाला। उस अण्डेका शिशु आधे शरीरसे तो पुष्ट हो गया था, परंतु उसका नीचेका आधा शरीर अभी कच्चा था। नवजात शिशुने क्रोधित होकर अपनी माताको शाप दिया, 'माँ! तूने लोभवश मेरे अधूरे शरीरको ही निकाल लिया है। इसलिये तू अपनी उसी सौतकी पाँच सौ वर्षोंतक दासी रहेगी, जिससे डाह करती है। यदि मेरी तरह तूने दूसरे अण्डेको भी फोड़कर उसके बालकको अंगहीन या विकृतांग न किया, तो वही तुझे इस शापसे मुक्त करेगा। यदि तेरी ऐसी इच्छा है कि मेरा दूसरा बालक बलवान् हो, तो धैर्यके साथ पाँच सौ वर्षतक और प्रतीक्षा कर।'

इस प्रकार शाप देकर वह बालक आकाशमें उड़ गया और सूर्यका सारथि बना। प्रात:कालीन लालिमा उसीकी झलक है। उस बालकका नाम अरुण हुआ।

एक बार कद्रू और विनता दोनों बहनें एक साथ ही घूम रही थीं कि उन्हें पास ही उच्चै:श्रवा नामका घोड़ा दिखायी दिया। यह अश्व-रत्न अमृत-मन्थनके समय उत्पन्न हुआ था और समस्त अश्वोंमें श्रेष्ठ, बलवान्, विजयी, सुन्दर, अजर, दिव्य एवं सब शुभ लक्षणोंसे युक्त था। उसे देखकर वे दोनों आपसमें उसका वर्णन करने लगीं।

कद्रूने विनतासे कहा—'बहिन! जल्दीसे बताओ तो यह घोड़ा किस रंगका है?' विनताने कहा—'बहिन! यह अश्वराज श्वेतवर्णका है। तुम इसे किस रंगका समझती हो?' कद्रूने कहा—'अवश्य ही इस घोड़ेका रंग सफेद है, परंतु पूँछ काली है। आओ, हम दोनों इस विषयमें बाजी लगायें। यदि तुम्हारी बात ठीक हो तो मैं तुम्हारी दासी रहूँ और मेरी बात ठीक हो तो तुम मेरी दासी रहना।' इस प्रकार दोनों बहनें आपसमें बाजी लगाकर और दूसरे दिन घोड़ा देखनेका निश्चय करके घर चली गयीं। कद्रूने विनताको धोखा देनेके विचारसे अपने हजार पुत्रोंको यह आज्ञा दी कि 'पुत्रो! तुमलोग शीघ्र ही काले बाल बनकर उच्चै:श्रवाकी पूँछ ढक लो, जिससे मुझे दासी न बनना पड़े।' जिन सर्पोंने उसकी आज्ञा न मानी, उन्हें उसने शाप दिया कि 'जाओ, तुम लोगोंको अग्नि जनमेजयके सर्प-यज्ञमें जलाकर भस्म कर देगा।' यह दैवसंयोगकी बात है कि कद्रूने अपने पुत्रोंको ही ऐसा शाप दे दिया। यह बात सुनकर ब्रह्माजी और समस्त देवताओंने उसका अनुमोदन किया। उन

दिनों पराक्रमी और विषैले सर्प बहुत प्रबल हो गये थे। वे दूसरोंको बड़ी पीड़ा पहुँचाते थे। प्रजाके हितकी दृष्टिसे यह उचित ही हुआ। 'जो लोग दूसरे जीवोंका अहित करते हैं, उन्हें विधाताकी ओरसे ही प्राणान्त दण्ड मिल जाता है।' ऐसा कहकर ब्रह्माजीने भी कद्रूकी प्रशंसा की।

कद्रू और विनताने आपसमें दासी बननेकी बाजी लगाकर बड़े रोष और आवेशमें वह रात बितायी। दूसरे दिन प्रात:काल होते ही निकटसे घोड़ेको देखनेके लिये दोनों चल पड़ीं। सर्पोंने परस्पर विचार करके यह निश्चय किया कि 'हमें माताकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। यदि उसका मनोरथ पूरा न होगा तो वह प्रेमभाव छोड़कर रोषपूर्वक हमें जला देगी। यदि इच्छा पूरी हो जायगी तो प्रसन्न होकर हमें अपने शापसे मुक्त कर देगी। इसलिये चलो, हमलोग घोड़ेकी पूँछको काली कर दें।' ऐसा निश्चय करके वे उच्चै:श्रवाकी पूँछसे बाल बनकर लिपट गये, जिससे वह काली जान पड़ने लगी। इधर कद्रू और विनता बाजी लगाकर आकाशमार्गसे समुद्रको देखते-देखते दूसरे पार जाने लगीं। दोनों ही घोड़ेके पास पहुँचकर नीचे उतर पड़ीं। उन्होंने देखा कि घोड़ेका सारा शरीर तो चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल है, परंतु पूँछ काली है। यह देखकर विनता उदास हो गयी, कद्रूने उसे अपनी दासी बना लिया।

समय पूरा होनेपर महातेजस्वी गरुड़ माताकी सहायताके बिना ही अण्डा फोड़कर उससे बाहर निकल आये। उनके तेजसे दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं। उनकी शक्ति, गति, दीप्ति और वृद्धि विलक्षण थी। नेत्र बिजलीके समान पीले और शरीर अग्निके समान तेजस्वी था। वे जन्मते ही आकाशमें बहुत ऊपर उड़ गये। उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो दूसरे बड़वानल ही हों। देवताओंने समझा अग्निदेव ही इस रूपमें बढ़ रहे हैं। उन्होंने विश्वरूप अग्निकी शरणमें जाकर प्रणामपूर्वक कहा, 'अग्निदेव! आप अपना शरीर मत बढ़ाइये। क्या आप हमें भस्म कर डालना चाहते हैं? देखिये, देखिये, आपकी यह तेजोमयी मूर्ति हमारी ओर बढ़ती आ रही है।' अग्निने कहा, 'देवगण! यह मेरी मूर्ति नहीं है। ये विनता-नन्दन परमतेजस्वी पक्षिराज गरुड़ हैं। इन्हींको देखकर आपलोगोंको भ्रम हुआ है। ये नागोंके नाशक, देवताओंके हितैषी और असुरोंके शत्रु हैं। आप इनसे भयभीत न हों। मेरे साथ चलकर इनसे मिल लें।' तब अग्निके साथ जाकर देवताओं और ऋषियोंने गरुड़की स्तुति की।

देवताओं और ऋषियोंकी स्तुति सुनकर गरुड़जीने कहा—'मेरे भयंकर शरीरको देखकर जो लोग घबरा गये थे, वे अब भयभीत न हों। मैं अपने शरीरको छोटा और तेजको कम कर लेता हूँ।' सब लोग प्रसन्नतापूर्वक लौट गये।

एक दिन विनीत विनता अपने पुत्रके पास बैठी हुई थी, कद्रूने उसे बुलाकर कहा—'मुझे समुद्रके भीतर नागोंका एक दर्शनीय स्थान देखना है। वहाँ तू मुझे ले चल।' अब विनताने कद्रूको और गरुड़जीने माताकी आज्ञासे सर्पोंको अपने कन्धोंपर बैठा लिया और उनके अभीष्ट स्थानको चले। गरुड़जी बहुत ऊपर सूर्यके निकटसे चल रहे थे। तीक्ष्ण गर्मीके कारण सर्प बेहोश हो गये। कद्रूने इन्द्रकी प्रार्थना करके सारे आकाशको मेघ-मण्डलसे आच्छादित करा दिया, वर्षा हुई, सब सर्प सुखी हो गये। उन्होंने अभीष्ट स्थानपर पहुँचकर लवणसागर, मनोहर वन आदि देखा, यथेच्छ विहार किया और खूब खेल-कूदकर गरुड़से कहा—'तुमने तो आकाशमें उड़ते समय बहुत-से सुन्दर-सुन्दर द्वीप देखे होंगे। अब हमें और किसी द्वीपमें ले चलो।'

गरुड़ कुछ चिन्तामें पड़ गये। उन्होंने सोच-विचारकर अपनी मातासे पूछा कि 'माँ! मुझे सर्पोंकी आज्ञाका पालन क्यों करना चाहिये?' विनताने कहा—'बेटा! इन सर्पोंके छलसे मैं बाजी हार गयी और दुर्भाग्यवश अपनी सौत कद्रूकी दासी हो गयी।' अपनी माताके दु:खसे गरुड़ भी बड़े दुखी हुए। उन्होंने सर्पोंसे कहा—'सर्पगण! ठीक-ठीक बताओ, मैं तुम्हें कौन-सी वस्तु ला दूँ, किस बातका पता लगा दूँ अथवा तुमलोगोंका कौन-सा उपकार कर दूँ, जिससे मैं और मेरी माता दासत्वसे मुक्त हो जायँ?' सर्पोंने कहा—

'गरुड़! यदि तुम अपने पराक्रमसे हमारे लिये अमृत ला दो, तो हम तुम्हें और तुम्हारी माताको दासत्वसे मुक्त कर देंगे।' सर्पोंकी बात सुनकर गरुड़ने अपनी माता विनतासे कहा, 'माता! मैं अमृतके लिये जा रहा हूँ।'

ऐसा कहकर गरुड़ ऊपरकी ओर उड़े। उस समय देवताओंने देखा कि उनके यहाँ भयंकर उत्पात हो रहे हैं। देवराज इन्द्रने बृहस्पतिजीके पास जाकर पूछा—'भगवन्! यकायक बहुत-से उत्पात क्यों होने लगे हैं? कोई ऐसा शत्रु तो नहीं दिखायी पड़ता, जो मुझे युद्धमें जीत सके।' बृहस्पतिजीने कहा, 'इन्द्र! तुम्हारे अपराध और प्रमादसे तथा महात्मा वालखिल्य ऋषियोंके तपोबलसे विनतानन्दन गरुड़ अमृत लेनेके लिये यहाँ आ रहा है। वह आकाशमें स्वच्छन्द विचरता तथा इच्छानुसार रूप धारण कर लेता है। वह अपनी शक्तिसे असाध्य कार्यको भी साध सकता है। अवश्य ही उसमें अमृत हर ले जानेकी शक्ति है।' बृहस्पतिजीकी बात सुनकर इन्द्रने अमृतके रक्षकोंको सावधान करके कहा कि 'देखो, परम पराक्रमी पक्षिराज गरुड़ यहाँसे अमृत ले जानेके लिये आ रहा है। सचेत रहो। यह बलपूर्वक अमृत न ले जाने पाये।' सभी देवता और स्वयं इन्द्र भी अमृतको घेरकर उसकी रक्षाके लिये डट गये।

गरुड़ने वहाँ पहुँचते ही पंखोंकी हवासे इतनी धूल उड़ायी कि देवता अन्धे-से हो गये। वे धूलसे ढककर मूढ़-से बन गये। सभी रक्षक आँखें खराब होनेसे डर गये। वे एक क्षणतक गरुड़को देख भी नहीं सके। सारा स्वर्ग क्षुब्ध हो गया। चोंच और डैनोंकी चोटसे देवताओंके शरीर जर्जरित हो गये। इन्द्रने वायुको आज्ञा दी कि 'तुम यह धूलका परदा फाड़ दो। यह तुम्हारा कर्तव्य है।' वायुने वैसा ही किया। चारों ओर उजाला हो गया, देवता उनपर प्रहार करने लगे। गरुड़ने उड़ते-उड़ते ही गरजकर उनके प्रहार सह लिये और आकाशमें उनसे भी ऊँचे पहुँच गये। देवताओंके शस्त्रास्त्रोंके प्रहारसे गरुड़ तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने उनके आक्रमणको विफल कर दिया। गरुड़के पंखों और चोंचोंकी चोटसे देवताओंकी चमड़ी उधड़ गयी, शरीर खूनसे लथपथ हो गया। वे घबराकर स्वयं ही तितर-बितर हो गये। इसके बाद गरुड़ आगे बढ़े। उन्होंने देखा कि अमृतके चारों ओर आगकी लाल-लाल लपटें उठ रही हैं। अब गरुड़ने अपने शरीरमें आठ हजार एक सौ मुँह बनाये तथा बहुत-सी नदियोंका जल पीकर उसे धधकती हुई आगपर उड़ेल दिया। अग्नि शान्त होनेपर छोटा-सा शरीर धारण करके वे और आगे बढ़े।

सूर्यकी किरणोंके समान उज्ज्वल और सुनहला शरीर धारण करके गरुड़ने बड़े वेगसे अमृतके स्थानमें प्रवेश किया। उन्होंने वहाँ देखा कि अमृतके पास एक लोहेका चक्र निरन्तर घूम रहा है। उसकी धार तीखी है, उसमें सहस्रों अस्त्र लगे हुए हैं। वह भयंकर चक्र सूर्य और अग्निके समान जान पड़ता है। उसका काम ही था अमृतकी रक्षा। गरुड़जी चक्रके भीतर घुसनेका मार्ग देखते रहे। एक क्षणमें ही उन्होंने अपने शरीरको संकुचित किया और चक्रके आरोंके बीच होकर भीतर घुस गये। अब उन्होंने देखा कि अमृतकी रक्षाके लिये दो भयंकर सर्प नियुक्त हैं। उनकी लपलपाती जीभें, चमकती आँखें और अग्निकी-सी शरीर-कान्ति थी। उनकी दृष्टिसे ही विषका संचार होता था। गरुड़जीने धूल झोंककर उनकी आँखें बन्द कर दीं। चोंचों और पंजोंसे मार-मारकर उन्हें कुचल दिया, चक्रको तोड़ डाला और बड़े वेगसे अमृत-पात्र लेकर वहाँसे उड़ चले। उन्होंने स्वयं अमृत नहीं पीया। बस, आकाशमें उड़कर सर्पोंके पास चल दिये।

आकाशमें उन्हें विष्णुभगवान्के दर्शन हुए। गरुड़के मनमें अमृत पीनेका लोभ नहीं है, यह जानकर अविनाशी भगवान् उनपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'गरुड़! मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। मनचाही वस्तु माँग लो।' गरुड़ने कहा, 'भगवन्! एक तो आप मुझे अपनी ध्वजामें रखिये, दूसरे मैं अमृत पीये बिना ही अजर-अमर हो जाऊँ।' भगवान्ने कहा 'तथास्तु!' गरुड़ने कहा, 'मैं भी आपको वर देना चाहता हूँ। मुझसे कुछ माँग लीजिये।' भगवान्ने

कहा, 'तुम मेरे वाहन बन जाओ।' गरुड़ने 'ऐसा ही

होगा' कहकर उनकी अनुमतिसे अमृत लेकर यात्रा की। इस प्रकार गरुड़ भगवान् विष्णुके वाहन बन गये।

अबतक इन्द्रकी आँखें खुल चुकी थीं। उन्होंने गरुड़को अमृत ले जाते देख क्रोधसे भरकर वज्र चलाया। गरुड़ने वज्राहत होकर भी हँसते हुए कोमल वाणीसे कहा—'इन्द्र! जिनकी हड्डीसे यह वज्र बना है, उनके सम्मानके लिये मैं अपना एक पंख छोड़ देता हूँ। तुम उसका भी अन्त नहीं पा सकोगे। वज्राघातसे मुझे तनिक भी पीड़ा नहीं हुई है।' गरुड़ने अपना एक पंख गिरा दिया। जिसे देखकर लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ। सबने कहा, 'जिसका यह पंख है, उस पक्षीका नाम 'सुपर्ण' हो।' इन्द्रने चकित होकर मन-ही-मन कहा, 'धन्य है यह पराक्रमी पक्षी!' उन्होंने कहा 'पक्षिराज! मैं जानना चाहता हूँ कि तुममें कितना बल है। साथ ही तुम्हारी मित्रता भी चाहता हूँ।' गरुड़ने कहा, 'देवराज! आपके इच्छानुसार हमारी मित्रता रहे। बलके सम्बन्धमें क्या बताऊँ? अपने मुँहसे अपने गुणोंका बखान, बलकी प्रशंसा सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें अच्छी नहीं है। आप मुझे मित्र मानकर पूछ रहे हैं, तो मैं मित्रके समान ही बतलाता हूँ कि पर्वत, वन, समुद्र और जलसहित सारी पृथ्वीको तथा इसके ऊपर रहनेवाले आपलोगोंको अपने एक पंखपर उठाकर मैं बिना परिश्रम उड़ सकता हूँ।' इन्द्रने कहा, 'आपकी बात सोलहों आने सत्य है। आप अब मेरी घनिष्ठ मित्रता स्वीकार कीजिये। यदि आपको अमृतकी आवश्यकता न हो, तो मुझे दे दीजिये। आप यह ले जाकर जिन्हें देंगे, वे हमें बहुत दुःख देंगे।' गरुड़जीने कहा, 'देवराज! अमृतको ले जानेका एक कारण है। मैं इसे किसीको पिलाना नहीं चाहता हूँ। मैं इसे जहाँ रखूँ, वहाँसे आप उठा लाइये।' इन्द्रने सन्तुष्ट होकर कहा, 'गरुड़! मुझसे मुँहमाँगा वर ले लो।' गरुड़को सर्पोंकी दुष्टता और उनके छलके कारण होनेवाले माताके दुःखका स्मरण हो आया। उन्होंने वर माँगा—'ये बलवान् सर्प ही मेरे भोजनकी सामग्री हों।' देवराज इन्द्रने कहा, 'तथास्तु।'

इन्द्रसे विदा होकर गरुड़ सर्पोंके स्थानपर आये। वहीं उनकी माता भी थीं। उन्होंने प्रसन्नता प्रकट करते हुए सर्पोंसे कहा, 'यह लो, मैं अमृत ले आया। परंतु पीनेमें जल्दी मत करो। मैं इसे कुशोंपर रख देता हूँ। स्नान करके पवित्र हो लो। फिर इसे पीना। अब तुमलोगोंके कथनानुसार मेरी माता दासीपनसे छूट गयी, क्योंकि मैंने तुम्हारी बात पूरी कर दी है।' सर्पोंने स्वीकार कर लिया। जब सर्पगण प्रसन्नतासे भरकर स्नान करनेके लिये गये, तब इन्द्र अमृत-कलश उठाकर स्वर्गमें ले आये। मंगल-कृत्योंसे लौटकर सर्पोंने देखा तो अमृत उस स्थानपर नहीं था। उन्होंने समझ लिया कि हमने विनताको दासी बनानेके लिये जो कपट किया था, उसीका यह फल है। फिर यह समझकर कि यहाँ अमृत रखा गया था, इसलिये सम्भव है इसमें उसका कुछ अंश लगा हो, सर्पोंने कुशोंको चाटना शुरू किया। ऐसा करते ही उनकी जीभके दो-दो टुकड़े हो गये। अमृतका स्पर्श होनेसे कुश पवित्र माना जाने लगा। अब गरुड़ कृतकृत्य होकर आनन्दसे अपनी माताके साथ रहने लगे। वे पक्षिराज हुए, उनकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी और माता सुखी हो गयीं। [महाभारत]

हिन्दू-संस्कृतिका स्वरूप

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

❀ हिन्दू-संस्कृतिके स्वरूपको बतलानेके लिये रामायण एक महान् आदर्श ग्रन्थ है। उसमें हिन्दू-संस्कृतिका स्वरूप स्थल-स्थलपर भरा है। वाल्मीकीय और अध्यात्मरामायणके समस्त श्लोक तथा तुलसीकृत रामचरितमानसके सारे दोहे, चौपाई, छन्द आदि सभी इसी शाश्वत धर्मरूप हिन्दू-संस्कृतिका दिग्दर्शन करा रहे हैं। उनमें भी श्रीराम और सीताके आदर्श चरित्र एवं सभी भाइयोंका परस्पर भ्रातृप्रेम हिन्दू-संस्कृतिके प्रधान निदर्शक हैं।

❀ हिमालयका 'हि' और सिन्धु (समुद्र)-का 'न्धु' लेकर 'हिन्धु' शब्द बना है। उसीका अपभ्रंश 'हिन्दू' शब्द है। हिमालयसे समुद्रतकके स्थानका नाम 'हिन्दुस्थान' है और उसमें बसनेवाली जातिका नाम हिन्दू है। इस जातिका चाल-चलन, रहन-सहन, आहार-व्यवहार आदि जो स्वाभाविक कल्याणमय आचरण है, उसका नाम है 'हिन्दू-संस्कृति'।

❀ हिन्दू-संस्कृतिमें ईश्वरवाद एक प्रधान स्थान रखता है। यह सारा जगत् जिससे उत्पन्न हुआ है, वही सबका अभिन्न निमित्तोपादान कारण एकमात्र परमात्मा है। इससे यही निर्णय हुआ कि इसका उत्पादक, निर्माता, संचालक, संयोजक, रक्षक—जो कोई है, वही चेतन परमात्मा है। यह हिन्दुओंकी अनुभवयुक्त मान्यता सदासे चली आ रही है—इसीको 'हिन्दू-संस्कृति' कहते हैं।

❀ भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं, यह विश्वास हिन्दू जातियोंमें प्रायः सदासे ही चला आ रहा है। यह युक्तियुक्त और उचित ही है। निर्गुण-निराकाररूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सगुण-साकाररूपमें प्रकट होते हैं। गीता, भागवत आदि ग्रन्थोंमें भी अवतारवादका उल्लेख स्थान-स्थानपर मिलता है। इसके संस्कार प्रायः हिन्दुओंके हृदयमें स्वाभाविक ही अंकित हैं। यह है हिन्दू-संस्कृति।

❀ मृत व्यक्तिके लिये जो कुछ दिया जाता है, वह सब उसे प्राप्त होता है, किंतु जो मृत व्यक्ति मुक्त हो गया है, उसके प्रति दिया हुआ कर्ताके संचित कर्मरूप कोषमें जमा होता है। ये सब संस्कार हिन्दुओंके रग-रगमें भरे हुए हैं। इन्हींको लेकर प्रायः सभी हिन्दू सदासे श्राद्ध-तर्पण आदि करते आ रहे हैं। यह है हिन्दू-संस्कृति।

❀ हिन्दू-संस्कृतिमें ईश्वरोपासना सदासे ही प्रधान रूपसे चली आ रही है। यों ईश्वरको तो अपने-अपने दृष्टिकोणके अनुसार ईसाई और मुसलमान आदि सभी मानते हैं। कोई ईश्वरके साकाररूपकी, कोई निराकारकी और कोई दोनोंकी उपासना करते हैं। यह भेद उचित ही है। हिन्दुओंके हृदयमें तो ईश्वरोपासनाके भाव सदासे अंकित हैं। थोड़ी-सी विपत्ति पड़नेपर भी वे संकट-निवारणार्थ ईश्वरको ही पुकारते हैं और उन्हींका आश्रय ग्रहण करते हैं। हिन्दुओंके हृदयमें स्वाभाविक ही ईश्वरमें आस्तिक भाव—श्रद्धा-प्रेम है। यह हिन्दुओंकी संस्कृति है।

❀ प्राचीन धर्मग्रन्थोंको देखनेपर मालूम होता है कि माता-पिता आदि गुरुजनोंका आज्ञापालन, वन्दन और सेवा-पूजा करना—यह भी हिन्दू-संस्कृतिका एक प्रधान अंग है।

❀ श्रीरामके राज्यमें प्रायः सभी मनुष्य परस्पर प्रेम करनेवाले तथा नीति, धर्म-सदाचार और ईश्वरकी भक्तिमें तत्पर रहकर अपने-अपने धर्मका पालन करनेवाले थे। प्रायः सभी उदार-चित्त और परोपकारी थे। वहाँके प्रायः सभी पुरुष एकनारीव्रती और प्रायः सभी स्त्रियाँ पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली थीं। भगवान् श्रीरामका इतना प्रभाव था कि उनके राज्यमें मनुष्योंकी तो बात ही क्या, पशु-पक्षी भी परस्पर वैर भुलाकर निर्भय विचरा करते थे। उनके चरित्र बड़े ही प्रभावोत्पादक और अलौकिक थे। यह हमारे आर्यपुरुषोंका स्वाभाविक ही व्यवहार था। इसी आदर्शको हिन्दू-संस्कृति कहते हैं।

हमारे आन्तरिक शत्रु—

उत्तेजनाके क्षणोंमें

[क्रोध—कारण और निवारण]

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

अभी उस दिन एक एम०ए० पास सज्जन बहुत मामूली-सी बातपर अपने अधीनस्थ एक कर्मचारीपर बुरी तरह बिगड़ पड़े। तावमें आकर उन्होंने हाथ पकड़कर उसे बाहर कर दिया। नौजवान कर्मचारीका गरम खून उबला तो जरूर, परंतु वह ऐन मौकेपर सँभल गया। पी गया वह गुस्सेको। याद आ गया उसे कि उत्तेजनाके ऐसे क्षणोंमें शान्त रह जानेमें ही तो बहादुरी है। फिर भी उसके जीमें मलाल था।

मुझसे जब उसकी बात हुई तो वह सहजभावसे पूछ बैठा—'हम तो अपढ़ हैं, पर भला बताइये तो कि बी०ए०, एम०ए० पास करके भी आदमी ऐसा क्यों करता है?'

मैंने कहा—भैया,

'वह चितवनि कछु और है जेहि बस होत सुजान!'

वह पढ़ाई ही दूसरी होती है। स्कूल-कालेजोंमें उसकी शिक्षा नहीं दी जाती! मनोविकारोंसे विचलित न होना साधारण बात नहीं है। जीवनकी पाठशालामें बड़ी साधनाके बाद, कठिन और सतत अभ्यासके बाद कहीं जाकर मनुष्य इस परीक्षामें पास हो पाता है। सबके बसकी बात नहीं है यह। इसके लिये यह जरूरी नहीं कि मनुष्य डिग्री-याफ्ता हो। गँवार-से-गँवार, अपढ़-से-अपढ़ व्यक्ति इस पढ़ाईमें पास हो सकता है और विद्वान्-से-विद्वान्, एम०ए०, डी०लिट्०, डी०फिल्०, महामहोपाध्याय भी इसमें फेल हो सकता है।

तभी न कहा गया है—

निहंगो अजदहा ओ-शेरे-नर मारा तो क्या मारा!
बड़े मूज़ीको मारा, नफ्से-अम्माराको गर मारा!!
न मारा आपको जो खाक हो अक़सीर बन जाता!
अगर पारे को अय अक्सीरगर! मारा तो क्या मारा!!

× × ×

कोई बीस साल पहलेकी एक घटना है। एक किसान अपने गाढ़े पसीनेकी फसल बेचकर घर लौटा। नोटोंका बण्डल उसने कपड़ेमें लपेटकर एक ताखेमें रख दिया। उसका छोटा बच्चा देखता रहा और मौका पाते ही उस पोटलीको खींच लाया।

बाल-कौतूहल! वे रंग-बिरंगे कागजोंके टुकड़े उसको बहुत भले लगे! सामने आग जल रही थी।

'इन्हें आगमें जलानेसे कैसा मजा आयेगा'—बालककी कल्पना जाग्रत् हुई और उसने एक-एक कागज आगमें फेंकना शुरू ही तो कर दिया।

बाहरसे पिता लौटा तो देखा, बेटा उसके पसीनेकी सारी कमाई वस्तुतः स्वाहा कर रहा है।

क्रोध अपनी चरम सीमापर जा पहुँचा।

उसने बच्चेको ही उठाकर आगमें झोंक दिया!

× × ×

मेजपर एक बहुमूल्य पाण्डुलिपि रखी थी। घरके पालतू कुत्तेने उछल-कूदमें उसपर जलती हुई बत्ती गिरा दी। आगमें और चीजोंके साथ वह पाण्डुलिपि भी स्वाहा हो गयी!

कुत्तेका मालिक था विश्वका एक प्रख्यात महापुरुष।

जानते हैं उसने कुत्तेको क्या दण्ड दिया?

वह सिर्फ इतना बोला—'टॉमी! तुम नहीं जानते कि आज तुमने मेरा कितना भारी नुकसान कर दिया।'

× × ×

एक सिक्केके दो पहलू! परंतु एक-दूसरेसे कितने भिन्न! नुकसान दोनोंको हुआ। क्षति दोनोंकी हुई, परंतु एक क्रोधके हाथका खिलौना बन गया, दूसरेने क्रोधको यह कहकर मार भगाया—'नुकसान तो हो ही गया। कुत्तेको मारने-पीटनेसे अथवा जानसे ही मार देनेसे भी जली हुई पाण्डुलिपि भला वापस आनेवाली है?'

किसानके नोट तो स्वाहा हुए ही, उसके कलेजेका टुकड़ा, उसके कुलका दीपक भी जाता रहा! कानूनकी अवज्ञाका दण्ड मिला ऊपरसे!

× × ×

क्रोधशान्तिका एक उपाय है—गालीके बदले गाली न देना!

सभी जानते हैं कि गालीसे गाली बढ़ती है। इसलिये गालीका सबसे सटीक जवाब चुप रहना है।

आवत गाली एक है, उलटत होय अनेक।
कह 'कबीर' नहिं उलटिये, वही एककी एक॥

उत्तेजनाके क्षणोंमें बड़ी जल्दी आग लगती है। क्रोधाग्निमें गालियोंकी आहुति पड़ी नहीं कि मामला संगीन होने लगता है। गाली ठहरी विषकी बेल। बातका बतंगड़ होते देर नहीं लगती। तू-तड़ाकसे गाली-गलौज, गाली-गलौजसे मारपीट, खून-खराबा। एक ही चीजके ये भिन्न-भिन्न पहलू हैं।

× × ×

कहते हैं कि एक बार भगवान् बुद्धने भिक्षा लेनेके लिये किसीका दरवाजा खटखटाया। धन-सम्पत्तिसे अत्यधिक आसक्ति रखनेवाले व्यक्ति मुफ्तमें किसीको एक छदाम भी नहीं देना चाहते। कोई भिक्षुक उनके द्वारपर आता है तो नम्रतासे उसे हाथ जोड़ना तो दूर रहा, वे गालियोंसे ही उसका स्वागत करते हैं। भगवान् बुद्धका पाला भी ऐसे ही व्यक्तिसे पड़ गया।

उन्होंने उससे पूछा—'अच्छा, यह तो बताइये कि आप किसीको कोई चीज दें और वह उसे स्वीकार न करे तो क्या होगा?'

वह बोला 'तो मेरी चीज लौटकर मेरे ही पास आ जायगी।'

बुद्ध बोले—'आप मुझे जो गालियोंका दान दे रहे हैं, उसे मैं स्वीकार नहीं करता!'

शर्मसे फट गया बेचारा!

× × ×

कोई गाली देता है, मैं उसे स्वीकार ही नहीं करता। चलो छुट्टी! गाली कुछ चिपट तो जाती नहीं! उसकी उपेक्षा ही वांछनीय है। बात तो तब बढ़ती है जब मैं गालीको स्वीकारकर गाली देनेवालेको खुद भी गाली देने लगता हूँ! मैं समझ लूँ कि गाली देकर वह अपनी ज़बान खराब कर रहा है तो मैं भी क्यों अपनी ज़बान खराब करूँ!

गुफ्तगूए ना मुलायम नेस्त रस्मे आकिला!

बुद्धिमानोंका यह तरीका नहीं है कि वे कड़ी बात बोलें।

प्रभु तो इतने दयालु हैं कि उन्होंने ज़बानमें हड्डीतक नहीं रखी।

फितरतको नापसंद है सख्ती ज़बानमें,
पैदा हुई न इसलिये हड्डी ज़बानमें!

फिर भी हम कड़ी बात कहें, कड़वी बात बोलें—यह ठीक नहीं।

× × ×

उत्तेजनाके क्षणोंमें हम इतना-सा ही सावधान रहें, बस, काम बना रखा है।

उत्तेजनाके क्षणोंमें मौन हो जाना भी क्रोध रोकनेका उत्तम उपाय है।

शान्त रहिये, कुछ मत बोलिये। कोई कुछ भी बकता रहे, आप अपनेपर उसका कुछ भी असर मत पड़ने दीजिये।

स्वामी कृष्णानन्दने उसकी अच्छी तरकीब बतायी है—मौनके आरम्भिक पाठके तौरपर आप अपनेको आज्ञा दें, यदि आज मुझे किसीने नाराज किया, मैं क्रुद्ध भी हो गया और मुझमें बदलेकी इच्छा जाग्रत् हो गयी, तो भी मैं शान्तिसे काम लूँगा। अपने मुखपर किसी तरहके क्रोधके चिह्न प्रकट नहीं होने दूँगा। मुसकराऊँगा और चुप रहूँगा।

× × ×

कहते हैं, सुकरातकी पत्नी अपने पतिपर व्यंग्यबाण कसनेकी अभ्यस्त थी। वे हँसकर, शान्त रहकर उसकी बातोंको सुनी-अनसुनी कर देते।

एक दिन बाहरसे उनके लौटनेपर उसने वाग्बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, पर वे चुपचाप रोजकी तरह सुनते रहे।

पत्नीके क्रोधका उफान फिर भी शान्त न हुआ। वह नालीसे एक घड़ा कीचड़ भर लायी और उसे उँड़ेल दिया सुकरातके सिरपर। मस्त दार्शनिक हँसकर बोला—चलो, अच्छा हुआ। गरजनेके बाद बरसना लाज़िमी था!

आपमें यदि इतनी क्षमता नहीं है, क्रोधका प्रसंग उपस्थित होनेपर आप उत्तेजित हो उठते हैं, दूसरेको क्रुद्ध होते देख आप शान्त नहीं रह पाते, तो सबसे अच्छी तरकीब यह है कि आप मैदान छोड़कर कहीं भाग जाइये। एकान्तमें चले जाइये। ऐसे व्यक्तिके पास चले जाइये, जिसका आप आदर करते हैं।

यों मैदानसे भागना बुरी बात है, कापुरुषोंका कार्य है, परंतु क्रोधके मैदानसे भागनेमें कोई बुरी बात नहीं है।

यहाँ तो मैदान छोड़कर भागनेसे आप मैदान जीतते हैं! क्रोधपर विजय प्राप्त करनेमें आपको सुभीता होता है।

उत्तेजनाके क्षणोंमें युद्धस्थलसे हट जाना, अन्यत्र चले जाना, मौका बरा देना, क्रोधको रोकनेका उत्तम उपाय है। अहंकारपर ठेस लगनेसे, इच्छाके विरुद्ध कुछ होनेसे, स्वार्थमें बाधा पड़नेसे हमारा क्रोध फुफकार उठता है।

सामने रहनेसे क्रोधाग्निमें घी पड़ता है, गालियोंसे बारूद भड़कती है, हमारी भी ज़बान बे-लगाम दौड़नेके लिये खुजला उठती है। ऐसे मौकेपर मौकेसे टल जाना श्रेयस्कर है।

न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी!

× × ×

राम-नाममें जो जादू है, वह किसीसे छिपा नहीं है। उत्तेजनाके क्षणोंमें दस-पन्द्रह मिनटतक 'राम-राम'की रट लगा दीजिये, आप देखेंगे, आपका क्रोध शान्त हो गया है। आपका गुस्सा काफूर हो गया है।

'राम-राम' कहिये, 'हरे कृष्ण' कहिये, 'नमः शिवाय' कहिये, 'ॐ' कहिये, जिस किसी नाममें रुचि हो, भगवान्‌का जो नाम प्रिय हो, उसमें अपनेको डुबा दीजिये, क्रोध जाता रहेगा।

× × ×

शान्तिका नाम ही शान्ति लाता है।

रोते बच्चेसे कहिये—शान्त हो जाओ। वह शान्त हो जायगा।

इसी प्रकार विकारग्रस्त जीव भी शान्तिका जाप करके शान्तिलाभ कर सकता है, **'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः'** की जोर-जोरसे रट लगा दीजिये, क्रोध शान्त हो जायगा। **'ॐ द्यौः शान्तिः, पृथिवी शान्तिः, आपः शान्तिः'** स्तोत्रका पाठ करने लगिये, गुस्सा जाता रहेगा।

× × ×

क्रोधसे जल रहे हैं, स्नान कर लीजिये। क्रोध शान्त हो जायगा। किसीका माथा गरम है, यह सुनते ही हम पानी लेकर दौड़ते हैं। इसीलिये कि जलमें उत्तेजनाको शान्त करनेकी अद्भुत सामर्थ्य है। स्वामी रामतीर्थने ठीक ही कहा है—

'जब देखो कि चिन्ता, क्रोध, काम (तमोगुण) घेरने लगे हैं, तो चुपकेसे उठकर जलके पास चले जाओ। आचमन करो, हाथ-मुँह धोओ या स्नान ही कर लो, अवश्य शान्ति आ जायगी; हरि-ध्यानरूपी क्षीरसागरमें डुबकी लगाओ, क्रोधके धुएँ और भापको ज्ञान-अग्निमें बदल दो।'

× × ×

क्रोध रोकनेकी यह भी एक तरकीब है कि सौसे एकतककी उलटी गिनती गिनना शुरू कर दीजिये। सौ, निन्यानबे, अट्ठानबे, सत्तानबे, छानबे, पंचानबे, चौरानबेसे होते-होते एकतक आ जायँ। फिर उसी प्रकार सौसे एकतक लौटें।

एक राजा क्रोध शान्त करनेके लिये एक कठिन भाषाकी वर्णमालाके अक्षर याद करने लगता था।

तात्पर्य यह कि मनकी दिशाको मोड़ दें। क्रोधकी बात छोड़कर किसी अन्य ही काममें उसे लगा दें। प्रसंग बदल देनेसे क्रोधका उफान शान्त हो जाता है।

× × ×

क्रोधका विरोधी भाव है क्षमा। आपसे यदि किसीके प्रति कोई अपराध बन पड़ा है, तो क्षमा माँग लेना आपका कर्तव्य है।

दूसरेने यदि आपके प्रति कोई अपराध किया है तो उसे भी आप क्षमा कर दें।

प्रभु हमारे न जाने कितने अपराध क्षमा करते हैं और हम मामूली-से-मामूली अपराधोंको क्षमा नहीं करते, इससे बढ़कर कृतघ्नता और होगी ही क्या!

पल-पलके उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके।
भिद्यो न कुलिसहुँ ते कठोर चित कबहुँ प्रेम सिय-पीके॥

× × ×

'मैं सबको क्षमा करता हूँ, सब मुझे क्षमा करें।'—यही हमारा आदर्श होना चाहिये।

मेरा कोई विरोधी नहीं। कोई मेरा शत्रु नहीं। सब प्राणिमात्र मेरे परम आत्मीय हैं, मेरे परम मित्र हैं। सबके हितमें ही मेरा हित है।

इस प्रकारकी मैत्री-भावना हमें प्रतिक्षण करते रहनी चाहिये।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

चेतावनी

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

बहुत गयी थोड़ी रही, नारायण अब चेत।
काल चिरैया चुगि रही, निसिदिन आयू खेत॥
काल्हि करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पलमहँ परलै होयगी, फेर करैगा कब॥
रामनामकी लूट है, लूटि सकै तो लूट।
फिरि पाछे पछितायगा प्रान जाहिंगे छूट॥
तेरे भावै जो करो, भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठकर, अपनो भवन बुहार॥

उम्र बीत रही है, रोज-रोज हम मौतके नजदीक पहुँच रहे हैं। वह दिन दूर नहीं है, जब हमारे इस लोकसे कूच कर जानेकी खबर अड़ोसी-पड़ोसी और सगे-सम्बन्धियोंमें फैल जायगी। उस दिन सारा गुड़ गोबर हो जायगा। सारी शान धूलमें मिल जायगी। सबसे नाता टूट जायगा। जिनको 'मेरा-मेरा' कहते जीभ सूखती है, जिनके लिये आज लड़ाई उधार लेनेमें भी इनकार नहीं है, उन सबसे सम्बन्ध छूट जायगा, सब कुछ पराया हो जायगा। मनका सारा हवाई महल पलभरमें ढह जायगा। जिस शरीरको रोज धो-पोंछकर सजाया जाता है—सर्दी-गर्मीसे बचाया जाता है, जरा-सी हवासे परहेज किया जाता है—सजावटमें तनिक-सी कसर मनमें संकोच पैदा कर देती है, वह सोने-सा शरीर राखका ढेर होकर मिट्टीमें मिल जायगा। जानवर खायेंगे तो विष्ठा बन जायगा, सड़ेगा तो कीड़े पड़ जायँगे। यह सब बातें सत्य—परम सत्य होनेपर भी हम उस दिनकी दयनीय दशाको भूलकर याद नहीं करते। यही बड़ा अचरज है। इसीलिये युधिष्ठिरने कहा था—

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

प्रतिदिन जीव मृत्युके मुखमें जा रहे हैं, पर बचे हुए लोग अमर रहना चाहते हैं; इससे बढ़कर आश्चर्य क्या होगा? अतएव भाई! बेखबर मत रहो। उस दिनको याद रखो, सारी शेखी चूर हो जायगी। ये राजमहल, सिंहासन, ऊँची-ऊँची इमारतें, किसी काममें न आयेंगी। बड़े शौकसे मकान बनाया था, सजावटमें धनकी नदी बहा दी थी, पर उस दिन उस प्यारे महलमें दो घड़ीके लिये भी इस देहको स्थान न मिलेगा। घरकी सारी मालिकी छनमें छिन जायगी। सारी पद-मर्यादा मटियामेट हो जायगी।

इस जीवनमें किसीकी कुछ भलाई की होगी तो लोग अपने स्वार्थके लिये दो-चार दिन तुम्हें याद करके रो लेंगे। सभाओंमें शोकके प्रस्ताव पास करके रस्म पूरी कर दी जायगी। दुःख देकर मरोगे, तो लोग तुम्हारी लाशपर थूकेंगे। वश न चलेगा तो नामपर तो चुपचाप जरूर ही थूकेंगे। बस, इस शरीरका इतना-सा नाता यहाँ रह जायगा।

अभी कोई भगवान्‌का नाम लेनेको कहता है तो जवाब दिया जाता है—'मरनेकी भी फुरसत नहीं है, कामसे वक्त ही नहीं मिलता।' पर याद रखो, उस दिन अपने-आप फुरसत मिल जायगी। कोई बहाना बचेगा ही नहीं। सारी उछल-कूद मिट जायगी, तब पछताओगे, रोओगे पर ***'फिर पछताये का बनै जब चिड़िया चुग गयी खेत'***। मनुष्य-जीवन, जो भगवान्‌को प्राप्त करनेका एकमात्र साधन था, उसे तो यूँ ही खो दिया, अब बस, रोओ! तुम्हारी गफलतका यह नतीजा ठीक ही तो है।

पर अब भी चेतो! विद्या, बुद्धि, वर्ण, धन, मान, पदका अभिमान छोड़कर सरलतासे परमात्माकी शरण लो। भगवान्‌की शरणके सामने ये सभी कुछ तुच्छ हैं, नगण्य हैं!

विद्या-बुद्धिके अभिमानमें रहोगे, फल क्या होगा? तर्क-वितर्क करोगे, हार गये तो रोओगे—पश्चात्ताप होगा। जीत गये तो अभिमान बढ़ेगा। अपने सामने दूसरेको मूर्ख समझोगे। 'हम शिक्षित हैं' इसी अभिमानसे तो आज हमारे मनने बड़े-बड़े पुरखाओंको मूर्खताकी उपाधि प्रदान कर दी है। इस बुद्धिके अभिमानने श्रद्धाका सत्यानाश कर दिया। आज परमेश्वर भी कसौटीपर कसे जाने लगे! जो बात हमारे तुच्छ तर्कसे कभी सिद्ध नहीं होती, उसे हम किसीके भी कहनेपर कभी माननेको तैयार नहीं! इसी दुरभिमानने सच्छास्त्र और सन्तोंके अनुभवसिद्ध वचनोंमें तुच्छ भाव पैदा कर दिया। हम

उन्हें कविकी कल्पनामात्र समझने लगे। धनके अभिमानने तो हमें गरीब भाइयोंसे—अपनेही-जैसे हाथ-पैरवाले भाइयोंसे सर्वथा अलग कर दिया। ऊँची जातिके घमण्डने मनुष्योंमें परस्पर घृणा उत्पन्नकर एक-दूसरेको वैरी बना दिया। व्यभिचार, अत्याचार, अनाचार आज हमारे चिरसंगी बन गये। बड़े-से-बड़े पुरुष आज हमारी तुली-नपी अक्लके सामने परीक्षामें फेल हो गये।

पद-मर्यादाकी तो बात ही निराली है, जहाँ कुर्सीपर बैठे कि आँखें फिर गयीं, आसमान उलटा दिखायी पड़ने लगा! दो दिनकी परतन्त्रतामूलक हुकूमतपर इतना घमण्ड, चार दिनकी चाँदनीपर इतना इतराना! अरे, रावण-हिरण्यकशिपु-सरीखे धरती तौलनेवालोंका पता नहीं लगा, फिर हम तो किस बागकी मूली हैं। सावधान हो जाओ। छोड़ दो इस विद्या, बुद्धि, वर्ण, धन, परिवार, पदके झूठे मदको, तोड़ दो अपने-आप बाँधी हुई इन सारी फाँसियोंको, फोड़ दो भण्डा जगत्‌के मायिक रूपका, जोड़ दो मन उस अनादिकालसे नित्य बजनेवाली मोहनकी मोहमायाविनी किंतु मायानाशिनी मधुर मुरली-ध्वनिमें और मोड़ दो निश्चयात्मिका बुद्धिकी गतिको निज-नित्य-निकेतन नित्य सत्य आनन्दके द्वारकी ओर!

जलाशय-निर्माणका फल

पूर्वकालकी बात है, किसी धनीके पुत्रने एक विख्यात जलाशयका निर्माण कराया, जिसमें उसने दस हजार सोनेकी मुहरें व्यय की थीं। धनीने अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्राणपणसे चेष्टा करके बड़ी श्रद्धाके साथ सम्पूर्ण प्राणियोंके उपकारके लिये वह कल्याणमय जलाशय तैयार कराया था। कुछ कालके पश्चात् वह निर्धन हो गया। उसके बाद एक दूसरा धनी उसके बनवाये हुए जलाशयका मूल्य देनेको उद्यत हुआ और कहा—'मैं इस जलाशयके लिये दस हजार स्वर्णमुद्राएँ दूँगा। इसे खुदवानेका पुण्य तो तुम्हें मिल ही चुका है। मैं केवल मूल्य देकर इसके ऊपर अपना अधिकार करना चाहता हूँ। यदि तुम्हें लाभ जान पड़े तो मेरा प्रस्ताव स्वीकार करो।' धनीके ऐसा कहनेपर जलाशय-निर्माण करानेवालेने कहा—'भाई! दस हजारका पुण्यफल तो इस जलाशयसे मुझे रोज ही प्राप्त होता है। पुण्यवेत्ताओंने जलाशय-निर्माणका ऐसा ही पुण्य माना है। विश्वास न हो तो धर्मानुसार इसकी परीक्षा कर लो।' धनीने ईर्ष्यापूर्वक कहा—'बाबू! मेरी बात सुनो। मैं पहले तुम्हें दस हजार स्वर्णमुद्राएँ देता हूँ। इसके बाद मैं पत्थर लाकर तुम्हारे जलाशयमें डालूँगा। पत्थर स्वाभाविक ही पानीमें डूब जायगा। फिर यदि वह समयानुसार पानीके ऊपर आकर तैरने लगेगा तो मेरा रुपया मारा जायगा। नहीं तो इस जलाशयपर धर्मतः मेरा अधिकार हो जायगा।'

जलाशय बनवानेवालेने 'बहुत अच्छा' कहकर उससे दस हजार मुद्राएँ ले लीं और अपने घरको चल दिया। धनीने कई गवाह बुलाकर उनके सामने उस महान् जलाशयमें पत्थर गिराया। उसके इस कार्यको मनुष्यों, देवताओं और असुरोंने भी देखा। तब धर्मके साक्षीने धर्मतुलापर दस हजार स्वर्णमुद्राएँ और जलाशयके जलको तोला; किंतु वे मुद्राएँ जलाशयसे होनेवाले एक दिनके जलदानकी भी तुलना न कर सकीं। अपने धनको व्यर्थ जाते देख धनीके हृदयको बड़ा दुःख हुआ। दूसरे दिन वह पत्थर भी द्वीपकी भाँति जलके ऊपर तैरने लगा। यह देख लोगोंमें बड़ा कोलाहल मचा। इस अद्भुत घटनाकी बात सुनकर धनी और जलाशयका स्वामी दोनों ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये। पत्थरको उस अवस्थामें देख धनीने अपनी दस हजार मुद्राएँ उसीकी मान लीं। तत्पश्चात् जलाशयके स्वामीने ही वह पत्थर उठाकर दूर फेंक दिया।

जो स्वयं जलाशय बनवाता है, उसका पुण्य अक्षय होता है; अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके कुआँ, बावली अथवा पोखरेका निर्माण या जीर्णोद्धार कराना चाहिये।* [पद्मपुराण]

* किसी भी प्रकार जल-संरक्षण करना भी जलाशय-निर्माणका ही लघु संस्करण होता है।—**सम्पादक**

साधकोंके प्रति—

गुरुसे उऋण कैसे हों ?

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

जिससे हमें अपने कर्तव्यका ज्ञान प्राप्त हो अर्थात् जो हमारे साधनका निर्माण कर दे, वही गुरु है एवं गुरुद्वारा उपदिष्ट साधनको जीवनमें ढाल लेना, उसके अनुसार अपना जीवन बना लेना ही गुरुसे उऋण होना है।

हाड़-मांसका शरीर गुरु नहीं है। गुरुमें जो दिव्य ज्ञान है, वही गुरुतत्त्व है। उसका आदर करके उनकी आज्ञाके अनुसार अपना जीवन बना लेना ही शिष्यका शिष्यत्व है।

मनुष्यको गुरुतत्त्वकी प्राप्ति चार प्रकारसे होती है—

१-पहला गुरु तो भगवान्‌की कृपासे मिला हुआ विवेक है। उससे हरेक मनुष्य अपने साधनका निर्माण कर सकता है। जो प्राप्त विवेकका आदर करता है, उस साधकको बाह्य सद्‌गुरुकी आवश्यकता नहीं पड़ती। जो इसका आदर नहीं करता, वह दूसरे गुरुको पाकर भी साधनका निर्माण नहीं कर पाता।

२-दूसरा गुरु व्यक्तिके रूपमें मिलता है। जब मनुष्य अपने प्राप्त विवेकका आदर नहीं करता और सद्‌गुरुकी आवश्यकता समझकर उनको पानेकी चेष्टा करता है, तब उसे व्यक्तिके रूपमें गुरुकी प्राप्ति होती है। उनकी कृपासे भी साधक उनके उपदेशानुसार अपने साधनका निर्माण कर सकता है।

३-तीसरा गुरु ग्रन्थके रूपमें मिलता है। जब मनुष्यकी किसी व्यक्तिपर श्रद्धा नहीं होती, किसीके बताये हुए साधनके अनुसार वह अपना जीवन नहीं बना सकता, तब वह सत्-शास्त्रोंको अर्थात् गीता एवं रामायण आदि सत्पुरुषोंद्वारा रचे हुए ग्रन्थोंको गुरुरूपमें वरण कर सकता है और उनके उपदेशानुसार अपने साधनका निर्माण करके उसके अनुकूल अपना जीवन बना सकता है।

४-चौथा गुरु सत्संग है, अपने दोषोंको सामने रखकर आपसमें विचार-विनिमयद्वारा उनपर विचार करके साधनका निर्माण करनेका नाम ही सत्संग है। इस प्रकार साधनका निर्माण करके उसके अनुसार साधक अपना जीवन बना सकता है।

अत: यह सिद्ध हुआ कि साधनतत्त्व ही गुरुतत्त्व है और साध्यतत्त्व ही भगवान् है। साध्यसे भी साधनका महत्त्व अधिक है; जैसे धनसे भी धन-प्राप्तिके साधनका महत्त्व अधिक है। इसी भावको लेकर गुरुको भगवान्‌से भी बड़ा कहा जाता है। गुरुके शरीरका सेवन करना भी शिष्यका काम है; परंतु गुरुकी असली सेवा तो उनकी आज्ञाके अनुसार जीवन बना लेना ही है। श्रद्धा गुरुमें करनी चाहिये और प्रेम भगवान्‌में करना चाहिये। गुरु भी यही सिखलाता है।

आजकल न तो पहले-जैसे गुरु देखनेमें आते हैं और न वैसे शिष्य ही देखे जाते हैं। सबसे श्रेष्ठ गुरु तो वे होते हैं, जो शिष्यमें अपनी शक्तिका संचार करते हैं। जैसे परमहंसजीने विवेकानन्दमें किया। एक घटना है कि एक साधक मुक्तिकी तीव्र इच्छासे गुरुकी खोजमें पहाड़ोंपर और जंगलोंमें फिर रहा था। एक जगह उसे एक महात्माके दर्शन हुए। वह वहाँ जाकर बैठ गया। महात्माने पूछा—'तुमको क्या चाहिये?' उसने कहा—'मुक्ति।' महात्माने पूछा—'तुम्हें बन्धन ही क्या?' इस बातको सुनकर वह चौबीस घण्टे बैठा रहा। उसे सन्तोष हो गया।

गुरुका काम यही है कि साधक जो साधन करता है, उसीको सजीव बना दे अर्थात् उस साधनमें जो त्रुटि हो, उसे दूर करके उसे उज्ज्वल बना दे। उसमें कोई सन्देह हो तो उसे मिटा दे। जीनेकी आशा, पानेकी आशा, करनेकी आशा और भोगनेकी आशा—इन आशाओंने मनुष्यको ईश्वरसे दूर कर दिया, वर्तमानमें अपने प्रभुसे मिलनेकी लालसा उत्पन्न नहीं होने दी और संसारसे सच्चा वैराग्य नहीं होने दिया।

बन्धन और मुक्ति

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

❁ शरीरादि सांसारिक पदार्थोंको अपना मानना ही बन्धन है और अपना न मानना ही मुक्ति है। अपना मानने अथवा न माननेमें सब-के-सब स्वतन्त्र हैं।

❁ संसारके सब सम्बन्ध मुक्त करनेवाले भी हैं और बाँधनेवाले भी। केवल परमार्थ (सेवा) करनेके लिये माना हुआ सम्बन्ध मुक्त करनेवाला और स्वार्थके लिये माना हुआ सम्बन्ध बाँधनेवाला होता है।

❁ मानवशरीरका दुरुपयोग करनेसे जीव बँध जाता है और सदुपयोग करनेसे मुक्त हो जाता है। अपने स्वार्थके लिये दूसरोंका अहित करना मानव-शरीरका दुरुपयोग है और अपने स्वार्थका त्याग करके दूसरोंका हित करना उसका सदुपयोग है।

❁ नाशवान्‌को महत्त्व देना ही बन्धन है।

❁ मिले हुएको अपना मत मानो तो मुक्ति स्वत:सिद्ध है।

❁ अनुकूलता-प्रतिकूलता ही संसार है। अनुकूलता-प्रतिकूलतामें राजी-नाराज होनेसे मनुष्य बँध जाता है और राजी-नाराज न होनेसे मुक्त हो जाता है।

❁ शरीर संसारका अंश है और हम (स्वयं) परमात्माके अंश हैं। अत: शरीरको संसारके अर्पित कर दे अर्थात् संसारकी सेवामें लगा दे और स्वयंको परमात्माके अर्पित कर दे। फिर आज ही मुक्ति है।

❁ मुक्तिकी इच्छा रहनेसे शरीरके रहनेकी इच्छा नहीं होती, अगर होती है तो मुक्तिकी इच्छा है ही नहीं।

❁ निष्कामभावपूर्वक (दूसरोंके लिये) कर्म करनेसे मुक्ति होती है और सकामभावपूर्वक (अपने लिये) कर्म करनेसे बन्धन होता है। अत: मनुष्यको निष्कामभावपूर्वक अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये।

❁ संसार-बन्धनसे मुक्त होना हो तो प्राप्त वस्तुओंमें ममताका और अप्राप्त वस्तुओंकी कामनाका त्याग कर दो।

❁ भगवान्‌की बनायी हुई सृष्टि कभी बाँधती नहीं, दु:ख नहीं देती। जीवकी बनायी हुई सृष्टि (अहंता-ममता) ही बाँधती और दु:ख देती है।

❁ जिसको नहीं करना चाहिये, उसको करना और जिसको नहीं कर सकते, उसका चिन्तन करना—ये दो खास बन्धन हैं।

❁ वस्तुका मिलना अथवा न मिलना बन्धनकारक नहीं है, प्रत्युत वस्तुसे माना हुआ सम्बन्ध ही बन्धन-कारक है।

❁ संसारको अपनी सेवाके लिये मानना बन्धनका हेतु है और अपनेको संसारकी सेवाके लिये मानना मुक्तिका हेतु है।

❁ बन्धन क्रियासे नहीं होता, प्रत्युत कामनासे होता है।

❁ अप्राप्त वस्तुकी इच्छा और प्राप्त वस्तुकी ममता ही बन्धन है, परतन्त्रता है।

❁ भोगोंकी इच्छाका त्याग करनेके लिये मुक्तिकी इच्छा करना आवश्यक है, परंतु मुक्ति पानेके लिये मुक्तिकी इच्छा करना बाधक है।

❁ मनुष्य कर्मोंसे नहीं बँधता, प्रत्युत कर्मोंमें वह जो आसक्ति और स्वार्थभाव रखता है, उनसे ही बँधता है।

❁ यह सिद्धान्त है कि जबतक मनुष्य अपने लिये कर्म करता है, तबतक उसके कर्मकी समाप्ति नहीं होती और वह कर्मोंसे बँधता ही जाता है।

❁ जबतक प्रकृतिके साथ सम्बन्ध है, तबतक कर्म करना अथवा न करना—दोनों ही बन्धनकारक 'कर्म' हैं।

❁ मुक्ति स्वयंकी होती है, शरीरकी नहीं। अत: मुक्त होनेपर शरीर संसारसे अलग नहीं होता, प्रत्युत स्वयं शरीर-संसारसे अलग होता है।

मौनके क्षणोंमें दिव्य 'नाद'

(श्रीसुदेशजी गोगिया)

जिन्दगीमें किसीके गुरु बननेका प्रयास मत करिये, न ही शिष्य बनानेका। यह विचित्र दुनिया है, थोड़ेसे पोथे क्या पढ़ लिये, संस्कृतके कुछ श्लोक कण्ठस्थ कर लिये, चन्द शिक्षाप्रद बातें क्या पढ़-सुन लीं, उधारके गुरु बन बैठे। लोगोंने प्रशंसाके दो लफ्ज क्या बोले, पाँव छुआने लगे। 'गुरुजी' कहलाने लगे। मौलिक चिन्तन, साधना, स्वाध्याय एवं मनन कहीं छूट गया।

हाँ, 'समभाव'-'स्थितप्रज्ञता' जब जीवनमें उतर आये, तब मित्र बनाइये। जीवनकी सार्थकता एवं सौन्दर्य, जीवनके रहस्य अनुभवकी कलमसे निकलें—ऐसा प्रयास कीजिये। शेरो-शायरी और पुराने गीत, सुबुद्ध गीतकारोंके गीत गुह्य सांकेतिक सूत्रोंसे जिन्दगीसे रूबरू कराते हैं। सादगी, सहजता एवं सरलतासे आप न केवल अपने घर-वालोंके बल्कि समाजके हर प्राणीके नजदीक आ जाते हैं। हृदयसे उपजे प्रेमभावसे परिपूर्ण मुसकान किसको मोहित नहीं करती? यह तो सदा सहज प्रसन्नताका द्योतक है।

हाँ, अहंकार एवं क्रोधसे सदा सावधान रहिये। ये दोनों सूक्ष्म रूपसे कब मस्तिष्कमें उतर जायँ, पता ही नहीं चलता। सदा जागरूक रहिये। आपकी श्रेष्ठता आपकी सहज मुसकान और व्यवहारसे स्वयमेव छलकती है, जो आपके आन्तरिक भाव एवं गरिमाको स्पष्ट करती है। जीवनमें पुस्तकोंसे कभी नाता मत तोड़िये। पठन-पाठन, चिन्तन-मनन जिन्दगीके अन्ततक दिलो-दिमागको रोशन करते रहते हैं।

समय-समयपर 'मौन' धारण करिये। आपकी ऊर्जा और विकसित होगी। यह मौन आपको अपने-आपसे परिचित करायेगा। परम तत्त्वकी स्मृति सदा बनी रहेगी। निरन्तर अभ्याससे जीवनमें समग्रता आयेगी। रिश्तेदारोंकी च्वाइस आपको नहीं मिली। हाँ शुभका संग, मित्रोंका साथ आपके अपने हाथमें है। अच्छी शेरो-शायरी दिलो-दिमागको रोशन करती है। हँसीके फव्वारोंसे भरी सकारात्मक बातें जीवनमें आनन्दकी वृद्धि करती हैं। विश्वास कीजिये, जीवन गम्भीर यात्रा नहीं है। गम्भीर गमगीन क्या हुए, जिन्दगीकी रेल छूट गयी।

जिन्दगीमें प्रायः लोगोंका अनुभव रहता है कि ***'नेकी कर, जूते खा।'*** इस संदर्भमें मुझे केवल इतना कहना है कि इतिहासमें आखिरकार जीत हमेशा सच्चाई और नेकीकी ही होती रही है। ***'भलेका अंत भला।'***

श्रीरामचरितमानसमें स्पष्ट रूपसे लिखा है—

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

जो व्यक्ति जिस तरहका कर्म करता है, उसे फल भी उसीके अनुरूप मिलता है। जिस चीजका मूल ही ठीक नहीं, क्या उसपर फल-फूल आ सकते हैं?

हाँ, जीवनकी दिनचर्याके दौरान गलत अश्लील शब्दोंका चुनाव कभी न करें। कर्णप्रिय मीठे शब्दोंका चयन करें। सत्यको भी मीठा बनाकर बोलें। दूसरोंका दिल क्यों कर दुखे? वर्तमान समयके मैनेजमेण्ट एवं मार्केटिंगके ये सूत्र हैं।

अपनी सुप्त चेतना जगाकर न केवल अपने परिवार, समाज या देश; बल्कि विश्वमें सौहार्द एवं सद्भावनाके जागरणका शंखनाद कर सकते हैं। इसके लिये परम आवश्यक है कि दूसरोंको बदलनेकी बजाय हम स्वयंको बदलें। सन्त तिरुवल्लुवर कर्णप्रिय शब्दावलियोंके विषयमें कहते हैं—'नम्रता, मीठे बोल ही सही मायनोंमें आभूषण होते हैं। शेष सब कृत्रिम भूषण हैं।' दूसरोंका हक मारकर जो अधिक हर्षित होते हैं, कालान्तरमें उनके पतन और अधिक दुःखकी बारी आती है। याद रखिये, रिश्तेदारी या समाजमें शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसके विरोधी न हों। आवश्यक है कि हम कितने प्रेम, आपसी सौहार्द एवं सकारात्मक सुमधुर व्यवहारोंसे जीवनको कैसे समुन्नत बनाते हैं।

जीवनमें कई बार हम धर्म-संकटमें फँस जाते हैं। 'सच्चाई' और 'नैतिकता' के बीच 'उलझन' और 'कश्मकश' चलती है। ऐसे लम्होंमें अपने विवेक, संयम एवं अन्दरूनी शक्ति आपके मार्गदर्शक हैं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका गुह्यतम ज्ञान आध्यात्मिकताका

द्योतक है। मेरे लिये गीताका सतत पठन-पाठन एवं अभ्यास ऐसे गम्भीर क्षणोंको आसान बना देता है। हृदयसे निकले भाव सत्यताके मार्ग हैं।

ब्रह्मचर्यके विषयमें मैं इतना ही कहूँगा जो सदा 'ब्रह्म' में रमण करे, उस अनुपम प्राकृतिक ऊर्जा यानी कामकी ऊर्जाका ऊर्ध्वगमन उसके रूपान्तरणका द्योतक है। इसे विवेकपूर्ण तरीकेसे संयमित करना आवश्यक है। हाँ, इसका दमन अप्राकृतिक है, जो कई विकृत प्रवृत्तियों एवं विकारोंको जन्म देता है। आज समाजमें इन विकृतियोंका बोल-बाला बढ़ गया है।

भगवान् शंकर ने 'काम' को खत्म किया, पर दूसरे ही पल उसे अपने मनमें निवास दिया, वरना जगत् ठप्प हो जाता। ताबीज, नगीने इत्यादिका विक्रय करनेवाले, जो मशरूमकी तरह फैल रहे हैं—उनके सम्बन्धमें आजकी युवा पीढ़ीसे केवल इतना कहूँगा कि इन दुकानोंसे बचें। इनसे न उलझें, केवल इन्हें माफ कर दें। उच्चकोटिकी अमूल्य भारतीय संस्कृति, वैदिक ज्ञान, दार्शनिक मूल्यों एवं दैवीय-वाणीसे इसका कोई लेना-देना नहीं है।

आप प्रभुकी अनुपम कृति हैं। आप-जैसा ईश्वरने पहले कभी किसीको नहीं बनाया। न ही पुनरावृत्ति करेंगे। आप केवल विशेष कार्यके लिये धरापर आये हैं। आप जीवित हैं, यह उनकी 'कृपा', 'अनुग्रह', 'अनुकम्पा' का प्रसाद है। तुच्छ क्षुद्र बातोंमें मत उलझिये। इस अमूल्य जीवनका एक-एक क्षण अद्वितीय है। इसे मत गवाँइये। कुछ लम्हे अपने लिये भी निकालिये। समय नहीं गुजर रहा, शनैः-शनैः आप गुजर रहे हैं। मौनके क्षणोंमें उस नादको सुनिये, जो लगातार अपनी दिव्य ध्वनिसे आपको आनन्दसे आलोकित कर रहा है।

दृढ़ निश्चयकी शक्ति

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)

एक सेवक कुछ समयसे एक आश्रममें प्रबन्धनका कार्य कर रहा था। लेकिन उसकी सेवा और मेहनतका प्रभाव उसके आश्रमके लोगों और कार्योंपर दिखायी नहीं दे रहा था। बहुत कोशिशोंके बाद भी जब कोई सुधार न हुआ तो वह निराश होने लगा। एक रात उसे एक स्वप्न दिखायी दिया, जिसमें वह एक हथौड़ेद्वारा एक भारी चट्टानको तोड़नेका प्रयत्न कर रहा था। घण्टों लगातार पूरे सामर्थ्यसे किये गये प्रहारोंके बावजूद उसकी कोशिश बेकार जाती दिखायी दे रही थी। उससे सोचा, इसमें मेहनत करनेका कोई फायदा नहीं है, मैं इस कामको छोड़ रहा हूँ और उसने हथौड़ा नीचे रख दिया। तभी एक व्यक्ति उसके पास आया और उससे पूछा—'क्या तुम्हें इसी कार्यके लिये नियुक्त नहीं किया गया था? तुम अपनी जिम्मेदारीसे मुँह क्यों मोड़ रहे हो?' सेवकने उत्तर दिया—'श्रीमान्! यह कार्य व्यर्थ है, इतनी मेहनतके बाद भी इस चट्टानपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। अब क्यों मैं व्यर्थमें अपनी ताकत और समय इसमें गवाऊँ?'

व्यक्तिने उत्तर दिया—'यह सब सोचना तुम्हारा काम नहीं है। जिसने तुम्हें यह जिम्मेदारी दी है, वह इस सबके बारेमें जानता है, उसे तुम्हारी योग्यता और सामर्थ्यका भी पता है तथा इस चट्टानकी मजबूतीका भी। बस, सौंपा गया कार्य दृढ़ निश्चयके साथ भली-भाँति करो, परिणामकी चिन्ता मत करो। चलो, निराशा छोड़ो और पुनः अपने कार्यमें लग जाओ।' वस्तुतः हमारा हर प्रयास कार्यको परिणतिकी ओर पहुँचा रहा होता है, परंतु हमें उसकी अनुभूति तभी होती है, जब अन्तिम परिणाम आ जाता है।

उस व्यक्तिके कहनेपर सेवकने हथौड़ा फिरसे उठाकर उस चट्टानपर भरपूर प्रहार किया, अबकी बार एकही प्रहारमें चट्टान टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गयी। वह चौंककर जाग उठा, उसे मार्ग मिल गया था, वह अपने कार्यके लिये एक महत्त्वपूर्ण सबक सीख चुका था। वह जान चुका था कि उसे अपना कार्य करते रहना है, बिना परिणामकी चिन्ता किये। पता नहीं कौन-सा प्रहार अन्तिम सिद्ध हो।

अर्पण

(श्रीगौतम सिंहजी पटेल)

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है। उस शुद्ध बुद्धिवाले निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र, पुष्प, फल, जल आदि मैं सगुण रूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ। दूसरे शब्दोंमें जो पुरुष प्रेमपूर्वक भक्ति-भावसे पान-पत्ता, फल-फूल, जल-तुलसीदल आदि भी यदि मुझे समर्पित करता है, तो मैं उस शुद्ध चित्त भक्तका वह प्रेमोपहार केवल स्वीकार ही नहीं कर लेता, अपितु तुरन्त भोग भी लगा लेता हूँ। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि यदि कोई प्रेमीभक्त पत्र, पुष्प, फल या जलमात्र अर्पण करता है, तो भी भगवान् उसे स्वीकारते हैं।

उपहार चाहे कितना ही मूल्यहीन क्यों न हो, यदि वह प्रेम एवं सेवा-भाव-भक्तिके साथ दिया जाता है, तो वह सर्वेशको स्वीकार होता है। सर्वेश्वरतक पहुँचनेके लिये केवल अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्मविद्या अथवा अत्यधिक जटिल कर्मकाण्ड ही आवश्यक नहीं है, अपितु इसके लिये अति सरलतापूर्वक उपलब्ध पानके पत्ते एवं पुष्पहार स्वरूप उपहार भी पर्याप्त है। केवल और केवल भावके भूखे हैं प्रभु; प्रेम, भक्ति एवं सेवा-भावके भूखे हैं परमात्मा; उन पूर्णकामके लिये सब वस्तुएँ न मिलें तो भी कोई बात नहीं, इनमेंसे कोई एक भी उनके लिये पर्याप्त है। यदि इनमेंसे एक भी नहीं तो भी प्रभु अप्रसन्न नहीं होते। वे तो केवल-और-केवल मानसिक समर्पणसे भी प्रसन्न हो जाते हैं।

पत्रका शब्दार्थ केवल पत्ता नहीं, समाचार-पत्र तथा चिट्ठी-पत्री भी होता है। हम एकेश्वरको मानसिक पत्र भी लिख सकते हैं। इसे हम कृतज्ञता प्रकट करना भी कह सकते हैं। कहें कि 'प्रभु! हुई और हो जानेवाली भूलके लिये क्षमा-याचना करता हूँ। आज और अभीसे पुनः वही भूल न करनेकी शपथ लेता हूँ। की गयी और की जानेवाले कृपा और दयाके लिये कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। कृपया मुझे उपकृत करें। आपने हमारे जन्मसे पूर्व ही हमारे पास घर-द्वार, कुटुम्ब-परिवार, इष्ट-मित्र, सगे-सम्बन्धी, साज-सज्जा, भौतिक सुख-सुविधा, साधन-सम्पन्नता आदि-आदि लगभग सभी कुछ भेज दिया था। माता-पिताकी सम्पत्तिके हम जन्मजात अधिकारी बन गये। इन सबके लिये भी मैं आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। कृपया आप मुझे अनुगृहीत करें।'

सूर और तुलसीसदृश भक्त कवियोंने दोहा, सोरठा, छन्द एवं चौपाईरूपी फूल अर्पणकर प्रभुको पाया है या प्रभुने उन्हें अपनाया है। प्रभुके समक्ष कोई गीत गाकर तो देखे, कोई संगीत सुनाकर तो देखे। ओंठोंसे फूल झड़ते हैं। फूल न सही, फूल-सी मुसकान तो दे सकते हैं परमात्माको। फूल-सा प्रफुल्लित मुखड़ा तो दे सकते हैं परमपिताको। आनन्द अभिमुख चाहता है परमानन्द। और कुछ नहीं तो कम-से-कम प्रसन्नचित्त मुद्रा, आनन्दमय मनोवृत्ति अथवा उल्लसित भाव-भंगिमा तो अर्पण कर सकते हैं प्रभु-चरणोंमें। वही सही। इतने मात्रसे ही परब्रह्म ब्रह्मलीन कर लेते हैं। आनन्ददाता आनन्दधाममें आश्रय दे देते हैं। परमात्मा इस आत्माको अंगीकार कर लेते हैं।

पत्र न सही, पुष्प न सही, फल न सही, कर्मफल ही सही। ध्यान रहे कर्तव्य कर्मफल, वह भी केवल और केवल मानसिक रूपसे। आजतकका कुल कर्तव्य कर्मफल, नहीं तो पिछले वर्षका कर्तव्य कर्मफल, नहीं तो पिछले कोई माहविशेषका या फिर पिछले कुछ दिनों अथवा किसी दिनविशेषका कर्तव्य कर्मफल अर्पण करें। यह भी नहीं तो प्रभुको उधारी भी स्वीकार्य है। दृढ़ इच्छाशक्ति और सत्य-संकल्पित स्वरमें बोले कि विश्वात्मा! आजतक मैं अपने किसी भी क्रिया-कलापसे कर्तव्य-कर्मका क्रियान्वयन नहीं कर पाया हूँ। मैं आपको पूर्णतः सत्यनिष्ठाके साथ वचन देता हूँ कि आज और अभीसे जो भी कर्तव्य-कर्मका अनुपालन करूँगा, उसके फलको

अर्पण करता हूँ। निश्चित रूपसे विश्वास कर लेंगे विश्वेश्वर। निर्विवाद रूपसे स्वीकार कर लेंगे विश्वातीत।

पत्र, पुष्प, फल, जल कुछ भी न सही। जल अर्थात् पंचतत्त्व—अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश। सर्वविदित है कि सभी तत्त्वोंमें सब तत्त्व समाहित होते हैं। पंचतत्त्वोंसे यह हमारा शरीर बना है और अन्तमें हम इन्हीं पंचतत्त्वोंमें विलीन भी हो जाते हैं। इतना ही नहीं, ये पंचतत्त्व हमें आजीवन मुफ्तमें ही उपलब्ध होते रहते हैं। या यों कहें कि इन पंच तत्त्वोंकी उपलब्धताके एवजमें हमें कोई अदायगी नहीं करनी पड़ती। जल, थल, अनल, नभमण्डल और प्राणवायु—ये सभी परमात्माकी ओरसे मुफ्त प्राप्त हैं। जलतत्त्वके प्रतीकके रूपमें यहाँ जलको उद्धृत किया गया है। इसका सांकेतिक अभिप्राय है जल अर्थात् पंच-तत्त्व। यदि हम वैश्वानरसे केवल इतनी ही प्रार्थना करें कि ब्रह्माण्डनायक! इन पंचतत्त्वोंको मुफ्त घर पहुँचानेकी सेवाके लिये हम आपके एहसानमन्द हैं। इसके लिये हम आपके प्रति आभार व्यक्त करते हैं। तब इस स्थितिमें भी योगेश्वर वचनबद्ध हैं कि हमें स्वीकार करेंगे।

यहाँ पत्र, पुष्प, फल और जल—इन्हीं चार शब्दोंका उल्लेख हुआ है। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि केवल इतने ही पदार्थ अर्पणयोग्य होते हैं। यह एक दृष्टान्तमात्र है। इन पदार्थोंके अतिरिक्त कोई अन्य खाद्यान्न, धन-धान्य और वस्त्र-आभूषण भी परमात्माको स्वीकार्य है। साथ ही किसी भी लिंग, जाति, वर्ण और आश्रमका कोई भी व्यक्ति एकनाथको अर्पण कर सकता है। उन्होंने कहा है कि बल, बुद्धि, विद्या, गुण, धर्म, आयु, दशा एवं दिशा आदिके कारण किसीमें मेरी भेदबुद्धि नहीं है। मेरे लिये केवल एक ही कसौटी है शुद्ध मनसे भक्तिभाव। प्रयतात्मन् अर्थात् जितेन्द्रिय, संयमी अथवा शुद्ध आत्मा। श्लोकमें **भक्त्य** और **भक्त्या** कहा गया है, अर्थात् भक्तिभावसे और भक्तिपूर्वक। निष्कर्ष यह कि व्यक्तिद्वारा शुद्ध भक्तिभावसे भक्तिपूर्वक प्रदत्त वस्तु ही स्वीकृत करता हूँ। जैसे—

द्रौपदीसे पत्ता लेकर योगेश्वरने खा लिया और त्रिभुवनको तृप्त कर दिया। गजेन्द्रने सरोवरका एक पुष्प अर्पण किया तो मालिकने उसका उद्धार कर दिया। शबरीके दिये हुए फल पाकर भगवान् अति प्रसन्न हुए। बड़े ही प्रतापी, दयालु और सर्वस्व दानी महाराज रन्तिदेवने प्यासे चाण्डालरूपसे आये भगवान्को जल पिलाया तो उनको भगवान्के साक्षात् दर्शन हो गये। प्रेमाधिकतामें भक्तको इतना स्मरण नहीं रह जाता कि मैं क्या दे रहा हूँ, तो भगवान्को भी यह ख्याल नहीं रह जाता कि मैं क्या खा रहा हूँ। जैसे—विदुरानी प्रेमानन्दमें भाव-विभोर हो भगवान्को केलोंकी गिरी न देकर छिलके देती है, तो भगवान् उन छिलकोंको ही गिरीकी भाँति खा लेते हैं।

पदार्थों तथा खाद्यान्नोंको व्यक्ति जब वनस्पतियोंको देता है, तब वह खाद हो जाता है। जब उसे पशुओंको देता है, तब वह बलि हो जाता है। जैसे काकबलि, श्वानबलि, गोबलि आदि। जब उसे भिखारियोंको देता है, तब वह भिक्षा हो जाती है। जब उसे खिलाड़ियोंको देता है, तब वह पारितोषिक हो जाता है। जब उसे सम्बन्धियोंको देता है, तब वह नेग हो जाता है। जब उसे समकक्षोंको देता है, तब वह भेंट हो जाती है। जब उसे अग्निके माध्यमसे देवताओंको देता है, तब वह आहुति अथवा यज्ञ हो जाता है। जब उसे पुरोहितको देता है, तब वह दक्षिणा हो जाती है। जब उसे सत्पात्रों अथवा जरूरतमन्दोंको देता है, तब वह दान हो जाता है। जब उसे संयमपूर्वक अन्यके लिये रख छोड़ता है अथवा निग्रहपूर्वक स्वयं उपभोग नहीं करता, तब वह तप हो जाता है। जब उसे जलके माध्यमसे पितरोंको देता है, तब वह तर्पण हो जाता है। जब उसे शुद्धता, पवित्रता, पावनता एवं श्रद्धाके साथ अनुनय-विनय, पूजा-पाठ एवं भक्तिभावके माध्यमसे प्रभुको अर्पित करता है, तब वह 'अर्पण' हो जाता है। अतएव निष्कर्ष यह है कि प्रभुकी सेवामें सादर अर्पित करें, समर्पित करें, अर्पण करें, समर्पण करें।

वरदान हैं विफलताएँ

(डॉ० शैलजाजी)

जीवनमें मिलनेवाली असफलताओंसे व्यक्ति बहुत दुखी हो जाता है। बल्कि यह कहें कि वह निराश हो जाता है और एक तरहसे टूट-सा जाता है। ऐसे समयमें यदि उसे उचित मदद और सम्बल न मिल सके, तो उसका भ्रमित हो जाना भी स्वाभाविक है। असफलताएँ मिलनेपर एक क्षणके लिये लगता है कि जैसे सब कुछ खत्म हो गया। जितना भी परिश्रम किया गया सब व्यर्थ गया; और इसी तरहके न जाने कितने नकारात्मक विचार मनमें उत्पन्न हो जाते हैं। जिनसे मन और दुखी तथा उद्वेलित हो जाता है। ऐसी परिस्थितियोंके सन्दर्भमें ऐरिजोना स्टेट युनिवर्सिटीमें सोशल साइकोलॉजीके प्रोफेसर केनरिक कहते हैं कि व्यक्तिको अपनी असफलताको खुले दिलसे स्वीकार कर लेना चाहिये; क्योंकि वहींसे ही उसकी सफलताका मार्ग प्रशस्त होता है।

किसी भी कार्यमें सफलता अथवा असफलताके मिलनेका सिलसिला जीवनपर्यन्त चलता रहता है और दुनियामें शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसे कभी-न-कभी अपने कार्यमें असफलताका मुख देखनेको न मिला हो। हम जब कुछ चाहते हैं, तो उसकी तैयारी करते हैं। खूब परिश्रम करते हैं, लेकिन इन किये गये कार्योंके जो भी परिणाम प्राप्त होंगे, वे हमारे इच्छानुसार हो भी सकते हैं और नहीं भी, इन परिणामोंपर हमारा कोई अधिकार नहीं होता। इसलिये जो भी परिणाम मिलें, उन्हें खुले दिलसे स्वीकार करनेमें ही हमारी भलाई है। गीता कहती है कि कर्ममें हमारा अधिकार है, उसके फलमें नहीं—'**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**' (२।४७)। कर्मका फल तो अवश्य मिलेगा, पर वह कब मिलेगा और उसका स्वरूप क्या होगा, यह तय करना हमारे अधिकारक्षेत्रमें नहीं है।

जब हमें असफलता मिलती है तो हमें मनसे बहुत बुरा लगता है, अपने ऊपर क्रोध भी आता है, लेकिन उससे कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। इसलिये हमें इन मिलनेवाली असफलताओंसे कभी अपने प्रयासोंकी गतिको मन्द अथवा कुन्द नहीं करना चाहिये। बल्कि आगेके लिये योजना बनाकर पूरी तरह तैयारीके साथ जुट जाना चाहिये। मिलनेवाली असफलताएँ देखनेमें भले ही कितनी बड़ी क्यों न लगें, लेकिन वे हमारे जीवनसे बड़ी नहीं हो सकतीं और कभी भी असफलताओंको इतना बड़ा नहीं मान लेना चाहिये कि हम उनके कारण अपने जीवनको ही बोझ मानने लगें और हर परिस्थितिको नकारात्मकतासे स्वीकार करने लगें। जब हम अपनी असफलताको खुले दिलसे स्वीकार करते हैं, तो हम एक तरहसे अपने लिये नयी सम्भावनाओंके द्वार खोल देते हैं, लेकिन यदि हम इसे स्वीकार नहीं करते, तो अपने लिये आगे बढ़नेका, सफलता प्राप्त करनेका मार्ग ही अवरुद्ध कर देते हैं।

प्रसिद्ध दार्शनिक एवं चिन्तक कार्ल रोजर्सका कथन है कि सफलताकी कहानी एक पंक्तिमें अभिव्यक्त नहीं की जा सकती। यह विफलताओंके इतिहाससे निकला सत्य है। सर आइजक न्यूटन इसका एक अनुपम उदाहरण थे, जिन्होंने बचपनके दिन गरीबीमें गुजारे और वे पढ़ाईमें कई बार असफल भी हुए। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयने उन्हें निकाल भी दिया था, फिर भी वे भौतिक विज्ञानके महान् विद्वान् बने। महान् गणितज्ञ रामानुजनका बचपन बहुत निर्धनता और तंगहालीमें व्यतीत हुआ। दस वर्षकी आयुतक उन्होंने कोई औपचारिक शिक्षा भी नहीं प्राप्त की थी, लेकिन बादमें वे ही रामानुजन गणित विषयमें अपनी अद्भुत क्षमताके लिये सम्पूर्ण विश्वमें जाने गये। अब्राहम लिंकन एक निर्धन परिवारमें पैदा हुए, पले-बढ़े और राष्ट्रपति पदतक पहुँचे। कहते हैं कि उनके घरमें बिजलीतककी सुविधा न थी और वे स्ट्रीट लाइटमें बैठकर अपनी पढ़ाई किया करते थे। वे अपने वार्डके पंचतकका चुनाव नहीं जीत सके थे, लेकिन अपने सतत प्रयासोंके बलपर वे राष्ट्रपतिका चुनाव जीतनेमें सफल हुए।

थॉमस अल्वा एडिसन अपनी पढ़ाईमें इतने कमजोर

थे कि उनको विद्यालयसे निष्कासित कर दिया गया था। लेकिन अपने प्रयासोंके जुनूनसे वे विश्वके महानतम और सफलतम वैज्ञानिक बन गये, जिनके नामपर २५०० पेटेण्ट अंकित हुए हैं। इसलिये हमें स्वयंको कभी भी असफल समझनेकी भूल नहीं करनी चाहिये। जिन्दगी हमें अनेक अवसर प्रदान करती है और ये अवसर हमारे लिये एक कसौटीकी तरह होते हैं, जिनपर हमें खरा उतरना होता है। महापुरुषोंका कथन है कि असफल होनेपर हमें घबराना नहीं चाहिये। अपितु अन्य अवसरोंकी प्रतीक्षा करनी चाहिये और अपने प्रयास सतत जारी रखने चाहिये। दूरसंचार-क्रान्तिके अग्रदूत इंग्लैण्डके प्रोफेसर ग्राहम बेलके जीवनकी कहानी भी कुछ इसी प्रकारकी है। शिष्या बनी पत्नीके बहरेपनके उपचारमें जुटे ग्राहम बेलको अथक प्रयास करनेके बाद भी सफलताकी कोई किरण नजर नहीं आ रही थी। परंतु उन्होंने हार नहीं मानी और वे अपने अनुसन्धानमें पागलपनकी हदतक जुटे रहे। परिणाम यह हुआ कि वे टेलीफोनका आविष्कार करनेमें सफल हुए।

हमारी असफलताओंका मुख्य कारण यह होता है कि हमसे कहीं-न-कहीं ऐसी भूल होती है, जिसके कारण हमें असफलताका दंश झेलना पड़ता है। यदि हम अपने द्वारा होनेवाली भूलोंको समयपर पहचान लें और उन्हें दोहरानेसे बचते हुए अपने कार्यको अधिक कुशलताके साथ सम्पन्न करें, तो हम सफलताके अधिक निकट पहुँच सकते हैं। इसी कारण अमेरिकी लेखक और दार्शनिक अल्बर्ट हुब्बार्डका कहना है कि असफल व्यक्ति वह है, जिसने बड़ी गलतियाँ की तो हैं, परंतु जो अपनी गलतियों और अनुभवसे कुछ सीख नहीं पाया। जो व्यक्ति अपनी गलतियोंसे सीख लेता है, वह भविष्यमें अपने लिये सफलताओंके अनेक द्वार भी खोल लेता है।

यदि गहराईसे ध्यान दिया जाय तो पता चलेगा कि असफलताका सही मानक भी यही है कि हमने अपनी गलतियोंसे कुछ सीखा नहीं। हम या तो आत्ममुग्ध रहे अथवा सुधारके प्रति हमारी कोई इच्छा-शक्ति ही नहीं है। इसी कारण फुटबालके जादूगरके नामसे विख्यात ब्राजीलके फुटबॉलर पेले कहा करते थे कि हम गलतियाँ तो भरपूर करते हैं, पर हर मैचके बाद स्वयंका मूल्यांकन करते हैं कि कहाँ हम विरोधी टीमसे पिछड़ गये थे। वे कहते थे कि यदि आपने सामनेवालेको दोष दिया, तो आपकी अगली पराजय अवश्यम्भावी है। अच्छा होगा कि यदि आप अगली बार मैदानमें उतरें तो पहलेसे बेहतर तैयारी करके उतरें।

कहते हैं कि कमजोर तब रुकते हैं, जब वे थक जाते हैं और विजेता तब रुकते हैं, जब वे जीत जाते हैं। इसका व्यावहारिक उदाहरण विश्वकी जानी-मानी हस्तियोंके रूपमें हमें देखनेको मिलता है, जिन्होंने सफलता हासिल करनेके लिये विफलताके हर कदमको सफलताकी सीढ़ी बनाया और पूरी दुनियाको प्रेरणा दी। उन्होंने विफलताको व्यक्तिगत रूपसे न लेते हुए एक सकारात्मक प्रतिक्रियाके रूपमें देखा और अपनी रणनीतिका मूल्यांकनकर इच्छित परिणामको हासिल किया। उनका पहला कदम था, विफलताको फिरसे परिभाषित करना और उच्च स्तरपर पहुँचनेके लिये उसे एक अवसरके रूपमें देखना। हमें भी उन महान् हस्तियोंके समान विफलताओंका जश्न मनाना चाहिये और इनसे सफलताओंके लिये नये अवसरोंकी तलाश करनी चाहिये। जीवनमें मिलनेवाली हर विफलताके साथ हम सफलताके एक कदम और करीब आ जाते हैं।

महापुरुषोंका कथन है कि जीवनमें मिलनेवाली असफलताएँ केवल यही प्रमाणित करती हैं कि सफलताके लिये पूरे मनोयोगसे प्रयास नहीं किया गया। कहीं-न-कहीं हमारे ही प्रयास-पुरुषार्थमें चूक हुई है। इसलिये हमें यदि सफलता प्राप्त करनी है, तो धैर्यके साथ अपनी प्रत्येक विफलतासे कुछ-न-कुछ अवश्य सीखना चाहिये और इस प्रकार मिलनेवाली सीख एवं अनुभवसे जो राह बनती है, वह हमें सफलताके शिखरपर पहुँचाती है। इस तरह यह कहना युक्तियुक्त होगा कि विफलताएँ मनुष्यके लिये अभिशाप नहीं, बल्कि वरदान बन सकती हैं।

ढलता जीवन

(श्रीइन्द्रमलजी राठी)

मृत्यु ध्रुव सत्य है। जीवनके ढलनेकी ओर, मृत्युके सन्निकट बढ़नेकी क्रियाको वृद्धावस्थाकी संज्ञा दी गयी है। वस्तुत: यह प्राणीके जीवन जीनेका परिणाम है। सात्त्विक जीवन जीनेवाले, परिवारसहित जीवनसंगिनीके साथ पूर्ण सामंजस्य रखनेवाले प्राणियोंको वृद्धावस्था किसी भी परिस्थितिमें दुखद नहीं हो सकती। यह स्थिति तनकी अपेक्षा मनसे अधिक सम्बन्धित है। मन स्वस्थ है, युवा है तो मानव जीवनपर्यन्त युवा बने रहनेकी अनुभूति ही करता है। मैंने ९८ वर्षकी आयुवाले दैनिक नवज्योतिके संस्थापक, सम्पादक कप्तान श्रीदुर्गाप्रसादजी चौधरीको पूर्ण युवाकी भाँति तेजीसे चलते-फिरते, प्रसन्नताके साथ सक्रिय जीवन जीते देखा है। वे इस पीढ़ीके लिये बड़े प्रेरणादायी स्रोत हैं।

स्वस्थ मनके साथ वृद्धावस्थामें भी किसी प्रकारकी कोई समस्या नहीं आती, जिसका सुगमतासे समाधान न हो सके। अन्यथा ढलती आयुके साथ स्मरण-शक्ति, श्रवण-शक्ति, पाचन-शक्ति एवं दृष्टिका कमजोर होना, दाँत गिरना, पेशाब-सम्बन्धी बीमारी, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि बीमारियोंसे ग्रसित होना, स्वयंका चिड़चिड़ा होना, क्रोधाधिक्य, सहनशीलतामें कमी, परिवारद्वारा उपेक्षित, कामनाओं एवं तृष्णाओंका आधिक्य, स्वयंद्वारा अनावश्यक रूपसे टोका-टोकी, टीका-टिप्पणी एवं हस्तक्षेप करना, निजताका प्राधान्य, पारिवारिक सामंजस्यका अभाव आदि विभिन्न कारणोंसे स्वयंको ही अधिकाधिक दुखी होना होगा। ऐसी स्थितिसे बचनेके लिये स्व-नियन्त्रण, मौन-मनन, सत्संग, स्वाध्याय, स्वस्थ (स्वयंमें स्थित) आध्यात्मिक जीवनकी ओर बढ़ना, मानव-पशु-पक्षी आदिकी सेवा, मृदुता एवं दृढ़ताके साथ स्वयंद्वारा पारिवारिक सामंजस्य बैठाना हितकारी होगा।

वृद्धावस्थाको सानन्द जीनेके लिये नियमित जीवन-शैली अपनानी होगी। प्रात: ब्रह्ममुहूर्तमें निद्रा त्यागकर कुछ समय भगवान्को याद करने, नाम-जप, ध्यान आदिमें अवश्य लगायें।

तदुपरान्त उष:पान—ताँबेके लोटेमें ५-७ तुलसीके पत्तोंके साथ ३-४ गिलास पानी रात्रिमें रखें। लोटा लगभग एक चौथाई खाली रखें। उष:पानमें तुलसीके पत्ते खाकर पैरोंके बल बैठकर पानी पियें। इसके पश्चात् बड़ी आँतको सक्रिय करनेहेतु तत्सम्बन्धी साधारण व्यायाम २ से ५ मिनटतक करें। इसके पश्चात् शौच, दन्त-मंजन, तेल-मालिश एवं स्नान करें। ध्यान रहे, शरीरके साथ किसी प्रकारकी ज्यादती न करें। उष:पान एवं स्नान करते हुए ऋतुके अनुसार गर्म पानीका प्रयोग करें।

सामर्थ्यानुसार प्रात:कालीन भ्रमण, देवदर्शन (मन्दिर), प्राणायाम, योगासन, व्यायाम, रक्त-संचरणको गति देनेहेतु २० से ३० बारतक जोर-जोरसे ताली बजाना अपेक्षित है। अब स्वाध्यायकी बारी है। उत्तम साहित्य—रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता आदि पुस्तकोंका अध्ययन। जिनका भी अध्ययन करें, उन्हें भलीप्रकार आत्मसात्कर तदनुसार अपना जीवन ढालनेका प्रयास करें, इससे आपको शान्ति एवं सन्तोष मिलेगा। नियमित व्यायाम, प्राणायाम, भ्रमण करनेसे आप स्वस्थ रहेंगे। सेवाका अवसर उपलब्ध होनेपर ईश्वरप्रदत्त तन, धन एवं अन्य पदार्थोंसे फलासक्तिसे दूर रहते हुए बिना किसी भेदभावके पूर्ण लगनके साथ सेवा करके असीम आनन्दकी अनुभूति करें। इसे अपने जीवनका प्रमुख कर्तव्य मानें। आवश्यक होनेपर ऐसे कार्यमें दूसरोंका सहयोग भी लिया जा सकता है।

नाश्तेमें दूध, फल, अंकुरित अन्न, रस, रोटी ली जा सकती है। शारीरिक शक्ति बनाये रखनेहेतु च्यवनप्राश, अंजीर, बादाम, मुनक्के आदि मेवोंका सेवन उचित होगा। यथासम्भव चाय-कॉफीसे बचें, भोजन सदैव सात्त्विक, संतुलित एवं सीमित ही हो। रोटी मिश्रित अन्न—जौ, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, चना, ओटके आटेकी हो तो उत्तम। मिष्टान्न एवं गरिष्ठ भोजनसे बचें। नाश्ते एवं भोजनका समय परिवारको ही निश्चित करने दें। इस हेतु गृहणीपर अतिरिक्त

भार न डालें। इनमें जब मिले, जैसा मिले, जितना मिले, प्रभुके द्वारा प्रेरित एवं प्रेषित प्रसाद मानकर किसी प्रकारका दोष निकाले बिना, प्रसन्नताके साथ सेवन करें। दोष निकालकर खानेसे अमृत भी विष बन जाता है। ध्यान रहे अस्वस्थताका मार्ग पेटसे होकर ही गुजरता है। भोजन-प्रसादकी प्राप्तिपर सर्वप्रथम पूर्ण मनोयोगके साथ भगवान्‌को साक्षात् उपस्थित मानकर उन्हें अर्पणकर भोग लगायें। तत्पश्चात् शास्त्रानुसार ५ ग्रास गौ, कुत्ता आदि के लिये निकालकर प्रसन्नचित्तके साथ प्रत्येक ग्रास ३२ बारतक चबाते हुए भोजन करें। भोजनके मध्य एक गिलास पानी पीनेसे आप अधिक खानेसे बच सकेंगे। दोपहरके भोजनके उपरान्त छाछका भी सेवन करें। जूठा छोड़कर भोजनका अनादर न करें। अतिरिक्त वस्तु पहले ही निकाल दें। सायंकालीन भोजन सोनेसे ३-४ घण्टे पहले कर लें, जिससे उसके पाचनके लिये उचित मात्रामें समय मिल सके। बढ़ती हुई अवस्थाके साथ धीरे-धीरे भोजनकी मात्रा कमकर मलाईरहित दूध, फल, रस, छाछपर रहनेका प्रयास करें। आठ-दस गिलास पानीका सेवन करें, जिससे मूत्र-संस्थान विधिवत् कार्यशील रहे। शनैः-शनैः सायंकालीन भोजन छोड़ दें, रात्रिमें खाली पेट रहनेसे आराम मिलेगा।

सप्ताहमें एक दिन, न हो तो १५ दिनमें एक दिन उपवास अवश्य रखें। केवल दूध-पानीपर रहें। असमर्थता होनेपर दूध, फल एवं रस लें। इसपर भी तृप्ति न हो तो सीमित मात्रामें फलाहारी भोजन करें। गरिष्ठतासे अवश्य बचें, अन्यथा उपवासका उद्देश्य ही समाप्त हो जायगा। प्रातःकालीन भोजनके बाद विश्राम एवं सायंकालीन भोजनके पश्चात् सामर्थ्यानुसार भ्रमण अवश्य करें।

प्रायः सभी घरोंमें पूजा-स्थल या मन्दिर होते हैं, पारिवारिक सामंजस्य बनाये रखनेके लिये प्रातःकाल आरतीके उपरान्त परिवारके अधिकाधिक सदस्योंके साथ कीर्तन, सत्संग अवश्य करें। सप्ताहमें कम-से-कम एक बार एवं त्योहारोंके अवसरपर सम्पूर्ण परिवारके साथ मिल-बैठकर सामूहिक भोजनका आनन्द लें। परिणामतः राग-द्वेष आदि दोषोंसे मुक्त रह सकेंगे एवं छोटे बालक भी संस्कारित होंगे। यथासम्भव अपने कार्य स्वयं करें, अपना भार दूसरोंपर कम-से-कम डालें। आधुनिकता एवं पाश्चात्य संस्कृतिके प्रभाव तथा उच्च एवं तकनीकी शिक्षा एवं महिलाओंद्वारा धनोपार्जनकी सक्रियताके कारण पारिवारिक वातावरण, वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पानमें बड़ा अन्तर आ गया है, उनकी व्यस्तता एवं आवश्यकताको ध्यानमें रखकर आपको स्वयं ही उनके साथ सामंजस्य बैठाना होगा। इस ओर आपका सहयोग उन्हें भी आपकी अधिकाधिक सेवाहेतु प्रेरित करेगा। अकारण ही आप अपने आपको उपेक्षित मान, दुखी हो, क्रोधवश वृद्धाश्रमकी ओर उन्मुख न होकर स्वयं एवं परिवारको लांछित होनेसे बचायें।

जब भी बोलें, मीठा बोलें। टीका-टिप्पणी, टोका-टोकी एवं हस्तक्षेपसे बचें। आपका सहयोग एवं सदैव मुसकुराते रहना, बालकोंके मध्य बालक बन व्यवहार करना, अधिकाधिक समय मौन-मनन, लेखन एवं स्वाध्यायमें बिताना, सदैव प्रसन्न एवं सक्रिय रहना, परिवारके साथ कुछ समय गपशप लगाना, खेलना एवं सकारात्मक सोच स्वयं आपके लिये एवं परिवारके लिये हितकर होगा। न चाहनेपर अपने विचार किसीपर भी न थोपें। परामर्शपर अपनी सलाह अवश्य दें, किंतु मानने-न-माननेपर सदैव सम रहें। गीताके अध्याय १२ के १३—१९वें श्लोकमें वर्णित सद्‌गुणोंको अपनानेसे गृहस्थमें रहते हुए भी वानप्रस्थ एवं संन्यासका जीवनानन्द प्राप्त किया जा सकता है। शारीरिक अवस्थाके अनुसार वर्षमें १-२ बार तीर्थाटनपर जाना भी उत्तम होगा, किंतु बढ़ती आयुके साथ किसीका साथ होना अपरिहार्य है।

शरीरकी अस्वस्थताके कारण अत्यन्त आवश्यक होनेपर ही औषधिका सेवन करें। मनसे स्वस्थ रहने, नियमित प्राणायाम, व्यायाम, साधारण योगासन एवं भ्रमणकर स्वयंको पूर्णतः निरोग मानते हुए उत्तम स्वास्थ्य एवं आनन्दमय जीवनका उपभोग करें। रात्रिमें सोनेसे पूर्व दिनभरके क्रियाकलापोंपर एक विहंगम दृष्टि डालकर अवांछित कार्योंके लिये हृदयसे पश्चात्तापकर परमात्मासे क्षमा माँगते हुए उनकी पुनरावृत्तिसे बचानेके लिये निवेदन करें। तदुपरान्त उस परम पिताका ध्यान करते हुए गहरी निद्रामें खो जायँ।

सद्योमुक्तिके कुछ प्रेरणास्पद आर्ष दृष्टान्त

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

(१) अजामिल

कन्नौजमें अजामिल नामक एक शास्त्रज्ञ ब्राह्मण था। शील, सदाचार और सद्‌गुणोंका वह खजाना था। एक दिन वह पिताके आदेशानुसार वनमें गया और वहाँसे फल-फूल-समिधा तथा कुश लेकर लौटा। लौटते समय उसने एक भ्रष्ट शूद्रको एक निर्लज्ज वेश्याके साथ विहार करते देखा और उसका मन बिगड़ गया। वह धैर्य और ज्ञान खोकर उसकी ओर आकर्षित हो गया। उसने अपने पिताकी सारी सम्पत्ति उस वेश्यापर लुटा दी तथा अपनी कुलीन नवयुवती और विवाहिता पत्नीतकका त्याग कर दिया। वह उस वेश्यारूपी दासीके साथ ही रहने लगा और बटोहियोंको लूटकर, जुएमें छल करके, धोखाधड़ीसे धन चुराकर दासीका पेट भरता था। उस दासीसे अजामिलके दस पुत्र हुए। सन्तोंके कहनेसे उसने सबसे छोटे बेटेका नाम 'नारायण' रखा। अट्‌ठासी वर्षकी उम्रमें जब वह मरने लगा, तो मरते समय मोह तथा यमदूतोंके भयके कारण व्याकुल होकर उसने ऊँचे स्वरसे कुछ दूरीपर खेल रहे अपने पुत्र नारायणको पुकारा। भगवान्‌के पार्षदोंने देखा कि वह मरते समय हमारे स्वामी 'नारायण'का नाम ले रहा है, उनके नामका कीर्तन कर रहा है, अत: वे बड़े वेगसे झटपट वहाँ आ पहुँचे और यमराजके दूत, जो अजामिलके शरीरमेंसे उसके सूक्ष्म शरीरको खींच रहे थे, उन्हें बलपूर्वक रोक दिया। यमदूतोंने भगवान् विष्णुके पार्षदोंके समक्ष अजामिलके पापमय जीवनका वर्णन किया तथा कहा कि इसने अबतक अपने पापोंका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं किया है। इसलिये अब हम इस पापीको दण्डपाणि यमराजके पास ले जायँगे। वहाँ यह अपने पापोंका दण्ड भोगकर शुद्ध हो जायगा। भगवान्‌के पार्षदोंने कहा—'यमदूतो! इसने कोटि-कोटि जन्मोंकी पापराशिका पूरा-पूरा प्रायश्चित्त कर लिया है, क्योंकि इसने विवश होकर ही सही, भगवान्‌के परम कल्याणमय (मोक्षप्रद) 'नारायण' नामका उच्चारण तो किया है।

श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धके प्रथम अध्यायसे तृतीय अध्यायतक इस उपाख्यानका विस्तृत विवेचन आया है और भगवन्नामकी महिमाका मुक्त कण्ठसे माहात्म्य बताया गया है कि 'यमदूतो! जैसे जान या अनजानमें ईंधनसे अग्निका स्पर्श हो जाय तो वह भस्म हो ही जाता है, वैसे ही जान-बूझकर या अनजानमें भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन करनेसे मनुष्यके सारे पाप भस्म हो जाते हैं।' भगवान्‌के पार्षदोंने यमदूतोंको भागवत-धर्मका पूरा-पूरा निर्णय सुना दिया और अजामिलको यमदूतोंके पाशसे छुड़ाकर मृत्युके मुखसे बचा लिया। भगवान्‌के पार्षद वहीं अन्तर्धान हो गये। अजामिलने भगवान्‌के पार्षदोंके दर्शनजनित आनन्दमें मग्न होकर उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया। सर्वपापहारी भगवान्‌की महिमा सुननेसे अजामिलके हृदयमें शीघ्र ही भक्तिका उदय हो गया और वह अपने पापोंको याद करके पश्चात्ताप करने लगा। अजामिलके चित्तमें संसारके प्रति तीव्र वैराग्य हो गया। वह सबके सम्बन्ध और मोहको छोड़कर हरद्वार चला गया। वहाँ उसने योगमार्गका आश्रय लेकर परमात्माका साक्षात् कर लिया। तब उसने देखा कि उसके सामने वे ही चारों पार्षद, जिन्हें उसने पहले देखा था, खड़े हैं। अजामिलने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और उस तीर्थस्थानमें गंगाके तटपर अपना शरीर त्याग दिया और तत्काल भगवान्‌के पार्षदोंका स्वरूप प्राप्तकर उन पार्षदोंके साथ स्वर्णमय विमानपर आरूढ़ होकर आकाशमार्गसे भगवान् लक्ष्मीपतिके निवास-स्थान वैकुण्ठको चला गया। शुकदेवमुनि राजा परीक्षितको यह वृत्तान्त सुनाकर कहते हैं—'देखो! अजामिल-जैसे पापीने मृत्युके समय पुत्रके बहाने भगवान्‌के नामका उच्चारण किया। उसे भी वैकुण्ठकी प्राप्ति हो गयी। फिर जो लोग श्रद्धाके साथ भगवन्नामका उच्चारण करते हैं, उनकी तो बात ही क्या है?'

(२) राजर्षि खट्वांग

महाराज सगरके वंशमें विश्वसहके पुत्र हुए हैं—महाराज खट्वांग। जन्मसे ही वे धार्मिक और भगवद्भक्त थे। स्वर्गादि लोक देनेवाले सकाम कर्मोंमें उनका अनुराग नहीं था तथा वे लक्ष्मी, राज्य, ऐश्वर्य, स्त्री-पुत्र तथा परिवारमें भी आसक्त नहीं थे। कर्तव्य-बुद्धिसे भगवत्सेवा मानकर ही वे प्रजापालन करते थे। उन्होंने शरणागतकी रक्षाका व्रत ले रखा था। उनका इतना महान् पराक्रम तथा प्रभाव था कि जब भी देवता असुरोंसे पराजित हो जाते, तब वे इनकी शरण लेते। उन दिनों असुर प्रबल हो रहे थे। महाराजको बार-बार देवताओंकी सहायता करने जाना पड़ता था। एक बार असुरोंको पराजितकर महाराज स्वर्गसे पृथ्वीपर लौट रहे थे, तब देवताओंने उनसे इच्छानुसार वरदान माँगनेको कहा। उन्होंने सोचा—'यदि जीवनके अधिक दिन शेष हों तब तो यह कर्तव्यपालन, राज्यशासन आदि ठीक ही हैं, किंतु यदि आयु थोड़ी ही हो तो इस प्रकार भोगोंमें लगे रहना मूर्खता होगी। इस मनुष्य-शरीरका पाना कठिन है। इसी शरीरसे भवसागर पार न किया तो फिर पता नहीं किस योनिमें जाना पड़े। ये देवता भी भोगोंमें लिप्त रहते हैं तथा स्वयं आत्मज्ञानरहित हैं, ये मुझे कैसे मुक्त कर सकते हैं?' यह सोचकर उन्होंने देवताओंसे पूछा, 'आपलोग कृपाकर पहले यह बताइये कि मेरी आयु कितनी शेष है?' देवताओंने बतलाया कि महाराज! आपकी आयु दो घड़ी ही बाकी है। देवता दीर्घायु दे सकते थे, किंतु महाराजको शरीरका मोह नहीं था और न ही भोगोंमें आसक्ति थी। वे शीघ्रातिशीघ्र परम पवित्र भारतवर्षमें पहुँचे और भगवान्‌के ध्यानमें मग्न हो गये। महाराज खट्वांगका मन एकाग्र भावसे भगवान्‌में लगा था। शरीर कब गिर गया, इसका उन्हें पतातक नहीं लगा।

इससे यह शिक्षा मिलती है कि महाराजकी आयु तो उस समय दो घड़ी बची थी, किंतु हम सबको यह भी पता नहीं कि दो पल भी आयु शेष है या नहीं। भगवान्‌को पानेमें कुछ दस, बीस या सौ-दो सौ वर्ष नहीं लगते। सच्चे हृदयसे एक बार पुकारनेपर वे आ जाते हैं। चित्तको एकाग्र भावसे उनके चरणारविन्दोंमें लगाकर एक क्षणमें प्राणी उन्हें पा लेता है। महाराज खट्वांगकी भाँति मनुष्यको प्रत्येक समय मृत्युको सिरपर खड़ी देखकर भोगोंसे चित्त हटाकर उसे तुरन्त भगवान्‌के चरणोंमें ही लगा देना चाहिये।

(३) राजा बलि

कहा जाता है कि राजा बलि पूर्वजन्ममें जुआरी थे। एक दिन जुआरीको जूएमें कहीं कुछ पैसे मिले। उसे एक वेश्यासे अतिशय प्रेम था। उन पैसोंसे उसने एक माला अपनी प्रियतमाके लिये खरीदी। माला हाथमें लिये वह अपनी प्रियतमाका चिन्तन करते हुए जा रहा था कि एक पत्थरसे ठोकर खाकर वह गिर पड़ा और मरणासन्न हो गया। उसने सोचा यह माला मैं अपनी प्रियतमातक तो नहीं पहुँचा पाऊँगा, किंतु किसी महात्मासे ऐसा सुना है कि अगर कोई वस्तु शिवार्पण कर दी जाय तो हमारा कल्याण होता है। इस सद्भावसे उसने माला भगवान् शंकरको अर्पण कर दी। मरनेपर यमराजके दूत उसे यमराजके पास ले गये। यमराजने चित्रगुप्तसे जुआरीके पाप-पुण्यका हिसाब पूछा तो चित्रगुप्तने कहा—'प्रभो! यह तो जन्म-जन्मान्तरका पापी है। बस! थोड़ी देर पहले इसने एक वेश्याके लिये खरीदी हुई माला भगवान् शंकरको अर्पित की है, यही इसका पुण्य है।' यमराजने जुआरीको कहा कि तुम पहले पुण्य भोगना चाहोगे या पाप? जुआरीने सोचा मेरे पापोंका तो अन्त नहीं है, थोड़ा-सा मेरा पुण्य है, उसे ही पहले भोग लूँ। यमराजने उसे दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकका राज्य दे दिया। जुआरीने इन्द्रासनपर तुलसी रखी और ब्राह्मणोंको बुलाकर स्वर्गकी चिन्तामणि, नन्दनवन, ऐरावत हाथी, अमृत-कुण्ड आदि सारी सम्पत्ति दान कर दी। दो घड़ीके पश्चात् इन्द्र अपना लोक माँगने आये तो देखा कि जुआरीने सारा साम्राज्य और अमूल्य सम्पत्तियाँ तो दान कर डाली हैं। इन्द्रद्वारा यमराजसे जुआरीकी शिकायत करनेपर यमराजने विचार करके कहा कि अब तो यह नरकोंमें नहीं जायगा, इन्द्र ही बनकर रहेगा, क्योंकि इसने प्रचुर पुण्य कमा लिया है। यही जुआरी बादमें दानवीर राजा बलि हुआ।

इस प्रसंगसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि यद्यपि जुआरीने अपनी प्रियतमा वेश्याको सौंपी जानेवाली माला मृत्युके समय भगवान् शिवको अर्पण कर दी थी, किंतु भगवान्ने श्रीमद्भगवद्गीताके नवें अध्यायके छब्बीसवें श्लोकके भावके अनुसार 'जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्प आदि मैं सगुण रूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।' उस जुआरीके 'शिवार्पण'को सहर्ष ग्रहण किया और पुण्यस्वरूप उसे दो घड़ीहेतु इन्द्रलोक मिला। इस दो घड़ीका भी उसने पूरा सदुपयोग किया और अपने जीवनको सार्थक कर लिया। ऐसे ही व्यक्ति चाहे तो थोड़े समयमें भी स्वयंको भगवान्के अर्पण करके अपना उद्धार कर सकता है।

(४) राजा परीक्षित

कुरुवंशके एकमात्र वंशज सुभद्राकुमार अभिमन्युकी पत्नी उत्तराके गर्भमें आये परीक्षितको कौन नहीं जानता, जिसकी रक्षाके लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं उत्तराकी पुकारपर उसके गर्भमें प्रवेश कर गये और गर्भस्थ शिशुको चतुर्भुजरूपमें शंख, चक्र, गदा, पद्मके साथ दर्शन देते हुए अपनी गदाको गर्भके चारों ओर तेजीसे घुमाते हुए अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रको नष्ट करते रहे। बड़े होनेपर पाण्डवोंने राजा परीक्षितको राज्य सौंपकर हिमालयकी ओर प्रस्थान किया। राजा परीक्षितने एक दिन दिग्विजय करते समय शूद्र कलिको गौरूपी पृथ्वीदेवी और धर्मस्वरूप वृषभको प्रताड़ना देते देखा। उन्होंने तलवार खींचकर उसे मारना चाहा, किंतु याचना करनेपर उसे रहनेके लिये जुआ, शराब, स्त्री, हिंसा और स्वर्ण—ये पाँच स्थान दे दिये। इन पाँचोंसे प्रत्येक कल्याणकामी पुरुषको सावधान रहना चाहिये, अन्यथा उसका पतन हो सकता है।

एक दिन राजा परीक्षित आखेट करते हुए भूख-प्याससे व्याकुल शमीक ऋषिके आश्रम पहुँचे और उनसे जल माँगा। ध्यानस्थ होनेके कारण ऋषिने कोई उत्तर नहीं दिया। परीक्षित स्वर्णका मुकुट पहने हुए थे, जिसमें कलिने प्रवेश किया और राजाकी बुद्धि पलट दी। राजाने ऋषिद्वारा अपना अपमान समझकर अपने धनुषकी नोकसे एक मरा साँप उठाकर ऋषिके गलेमें डाल दिया और राजधानी लौट आये। शमीक ऋषिके तेजस्वी पुत्र शृंगी ऋषिने जब यह सब जाना तो राजा परीक्षितको शाप दे दिया कि आजके सातवें दिन तक्षक नाग राजाको डस लेगा और उसकी मृत्यु हो जायगी। राजमहलमें आकर राजाको अपनी भूलका स्मरण हुआ और वे अपने द्वारा किये गये अपराधका पश्चात्ताप करने लगे। इसी समय उन्हें शापका पता लगा। उन्हें तनिक भी दुःख नहीं हुआ। अपने पुत्र जनमेजयको राज्यका भार सौंपकर वे गंगातटपर जा बैठे और सात दिनोंतक निर्जल व्रतका निश्चय किया। वहाँ अनेक ऋषि-मुनि आये। राजा परीक्षितने उनसे अपने कल्याणका उपाय पूछा। उसी समय घूमते हुए व्यासनन्दन शुकदेवमुनि भी वहाँ आ गये। परीक्षितने उनका पूजन किया और कहा कि आप योगियोंके भी परम गुरु हैं, इसलिये मैं आपसे परम सिद्धिके स्वरूप और साधनके सम्बन्धमें प्रश्न कर रहा हूँ। राजा परीक्षितने कहा—भगवन्! जो पुरुष सर्वथा मरणासन्न हैं, उनको क्या करना चाहिये और साथ ही यह भी बतलाइये कि मनुष्यमात्रको क्या करना चाहिये? वे किसका श्रवण, किसका जप, किसका स्मरण और किसका भजन करें तथा किसका त्याग करें? इन्हीं प्रश्नोंका उत्तर शुकदेवमुनिने सात दिनोंमें श्रीमद्भागवतके रूपमें राजा परीक्षितको दिया। अन्तमें राजा परीक्षितने अपना चित्त भगवान्में लगा दिया। सातवें दिन तक्षक नाग ब्राह्मणके रूपमें राजा परीक्षितके पास गया और उन्हें डँस लिया। राजर्षि परीक्षित तक्षकके डँसनेसे पहले ही ब्रह्ममें स्थित हो चुके थे। अब तक्षकके विषकी आगसे उनका शरीर सबके सामने ही जलकर भस्म हो गया।

इस दृष्टान्तसे हमें शिक्षा मिलती है कि राजा परीक्षितने मात्र सात दिनोंमें अपना कल्याण कर लिया। हमारी मृत्यु भी इन्हीं सात दिनोंमेंसे एक दिन होनी है, जिसका हमें ज्ञान नहीं है। अतः मनुष्यमात्रको अपना कल्याण करनेमें सदैव सचेष्ट रहना चाहिये।

तीर्थ-दर्शन—

हरियाणाके पिहोवा (पृथूदक) तीर्थ

(डॉ० श्रीरनबीर सिंहजी, एम०टी०एम०, पी-एच०डी०)

पिहोवा भारतके हरियाणा राज्यके कुरुक्षेत्र जिलेमें सरस्वती नदीके तटपर स्थित एक पवित्र शहर है, जिसके बारेमें माना जाता है कि यह महाभारतकालसे भी पहले अस्तित्वमें था। सरस्वती नदीके तटपर पृथूदक तीर्थके पास हिन्दू वंशावली रजिस्टर संरक्षित है। अपने मन्दिरों और अन्य धार्मिक स्थलोंके लिये यह पर्यटकोंके बीच प्रसिद्ध है और इसके परिणामस्वरूप यह एक तीर्थस्थलके रूपमें विकसित हुआ है।

पिहोवा, जिसे पुराणोंमें 'पृथूदक'के नामसे भी जाना जाता है, कुरुक्षेत्रसे लगभग २५ किलोमीटर पश्चिममें स्थित है। 'पृथूदक' शब्दका अर्थ है—'पृथ्वीका सरोवर।' यह 'कुरुक्षेत्र-तीर्थयात्रा'के सबसे महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थलोंमेंसे एक है। इस स्थानपर, वेनके पुत्र राजा पृथुने अपने पिताका अन्तिम संस्कार किया था। किंवदन्तीके अनुसार, प्रजापति (ब्रह्मा)-ने पृथूदकमें ही सृष्टिकी रचना की थी। ऋषि विश्वामित्र, वसिष्ठ, शुक्र और अगस्त्य ध्यान एवं तपस्याके लिये इस पवित्र स्थानपर आते थे। मनुस्मृतिकी कल्पना भी मनुने यहाँ ही की थी। भगवान् श्रीकृष्णके सुझावपर, युधिष्ठिरने अपने पूर्वजों और प्रियजनोंके सम्मानमें यहाँ पिण्डदान किये, जिन्होंने महाभारत-युद्धमें अपने प्राणोंकी आहुति दी। वास्तवमें यह तीर्थ दिवंगतोंको पिण्डदान देने और उनकी शान्ति एवं मोक्षके लिये प्रार्थना करनेके लिये सबसे पवित्र स्थानके रूपमें प्रतिष्ठित है। गुर्जर-प्रतिहारकालके दौरान, यह एक तीर्थस्थानके रूपमें विशेषरूपसे उभरा। पुरालेख साक्ष्यके अनुसार, गुर्जर-प्रतिहारकालसे भी पहले पृथूदक एक पवित्र स्थान था। वैष्णव-सम्प्रदायके दो विशाल मन्दिर यहाँ बनाये गये थे। गरीबनाथ मन्दिरमें लगा भोजदेवका पिहोवा शिलालेख हर्ष-संवत् २७६ (ए०डी० ८८२) विभिन्न स्थानोंपर कई मन्दिरोंके निर्माणका वर्णन करता है। ९वीं शताब्दीके दौरान, घोड़ोंके व्यापारियोंने एक घोषणा की कि उनमेंसे प्रत्येक इस मन्दिर, इसके पुजारी और पिहोवाके अन्य स्थानोंके लिये एक विशेष राशिका योगदान देगा। पिहोवा शहरमें वर्तमानमें दो पवित्र स्थान हैं। एक तालाब ब्रह्माको और दूसरा देवी

सरस्वतीको समर्पित है। हर साल चैत्र अमावस्या (मार्च-अप्रैल)-के अवसरपर यहाँ एक बड़ा मेला लगता है, जिसमें लगभग २ से २.५ लाख भक्त आते हैं, विशेष रूपसे चावल और आटेके गोले बनाकर पिण्डदान करनेके लिये। हिन्दू अपने पूर्वजों और माताओंके अन्तिम संस्कारके लिये पिहोवाकी यात्रा करनेको एक पवित्र जिम्मेदारीके रूपमें मानते हैं, खासकर उन लोगोंके लिये जो दुर्घटना-जैसी दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियोंमें मारे गये थे। यह भी दावा किया जाता है कि सिख गुरुओंने कई मौकोंपर इस मन्दिरका दौरा किया है, जिसका अर्थ है कि यह स्थल हिन्दू और सिख धर्मोंकी एकताके बीच एक कड़ीके रूपमें कार्य करता है।

पिहोवाको एक पवित्र स्थल माना जाता है और हरियाणा-राज्य-सरकारने इसकी पवित्रताको बनाये रखनेके लिये नगरपालिका सीमाओंके भीतर मांसाहारी भोजनकी बिक्रीको अवैध कर दिया है। अदालतके आदेशके अनुसार कस्बेमें पशु-वधपर भी प्रतिबन्ध है। महाभारतके दौरान पिहोवामें अहीरों, विशेषरूपसे कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें मारे गये भगवान् कृष्णकी सेनाके अहीर सैनिकोंका अन्तिम संस्कार किया गया था। पिहोवाको अहीरोंके साथ-साथ सभी हिन्दुओं और सिखोंके लिये एक पवित्र तीर्थस्थल माना जाता है।

महाभारत युगके इस शहर पिहोवाको कई लोगोंद्वारा 'मोक्षस्थान'के रूपमें जाना जाता है। यह यात्रियोंके बीच पृथूदक तीर्थ और सरस्वती मन्दिरके लिये प्रसिद्ध है, जिसे हिन्दू पृथ्वीपर सबसे पवित्र स्थलोंमेंसे एक मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि सरस्वती मन्दिरके स्वच्छ जलमें डुबकी लगानेसे व्यक्तिके सभी पाप दूर हो जाते हैं। सरस्वती-मन्दिर-परिसर और पृथूदक तीर्थ भी कुरुक्षेत्रकी ४८ कोस परिक्रमाका हिस्सा है, जो तीर्थस्थलोंका एक क्षेत्र है। कुरुक्षेत्रकी ४८ कोस परिक्रमामें पृथूदक सबसे प्रमुख तीर्थोंमेंसे एक ऐतिहासिक शहर है, जो हजारों साल पहलेका है। माना जाता है कि महाभारतका युद्ध कई सदियों पहले सरस्वती नदीके तटपर हुआ था, जो अब सूख चुकी है। भले ही महाभारत-युद्धके समयतक नदी सूख चुकी थी, फिर भी यह एक पवित्र स्थल था, जहाँ लोग अपने पूर्वजोंको 'पिण्डदान' देते थे। स्थानीय लोककथाओंके अनुसार, यह अभी भी 'पितृतीर्थ' के रूपमें जाना जाता है और प्रयाग या गयासे बहुत पहले पिण्डदानके लिये सबसे पवित्र स्थल माना जाता था। कहा जाता है कि युद्ध शुरू होनेसे पहले, भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंको सरस्वती माता और उनके पूर्वजोंका आशीर्वाद दिलानेके लिये इस स्थानपर लाये थे। सरस्वती मन्दिरके प्रवेश-द्वारपर लगे स्तम्भ कई सदियों पुराने हैं।

वंशावली रजिस्टर—पिहोवा में हिन्दू तीर्थयात्रियोंके वंशावली रजिस्टर हैं, जो एक प्रकारसे रिकार्ड हैं।

पशुपतिनाथ-महादेव-मन्दिर—दक्षिण भारतीय शैलीका यह राजसी मन्दिर पिहोवा शहरके दक्षिणमें बाबा श्रवणनाथ मठके प्रांगणमें स्थित है। इसके ऊपर और नीचेके खम्भे बहुत आकर्षक हैं। यह मराठाकालके दौरान बनाया गया पिहोवाका सबसे बड़ा मन्दिर है। गर्भगृहमें एक चारमुखी कसौटी पत्थरका लिंग (काठमाण्डू, नेपालमें पशुपतिनाथ-मन्दिरके समान) है। मन्दिरके सामने एक ऊँचे चबूतरेपर बने गुम्बददार मण्डलकी छतपर शानदार भित्तिचित्र हैं।

प्राचीन शिव-मन्दिर—यहाँ एक प्राचीन शिव-मन्दिर है, जो लगभग ९वीं-१०वीं शताब्दी ई० का बना है। इस प्राचीन शिव-मन्दिरके प्राचीन स्थलसे हिन्दू देवी-देवताओंकी कई मूर्तियाँ मिली हैं। इन निष्कर्षोंके अनुसार, यह पिहोवा शिलालेखोंमें वर्णित विष्णु मन्दिरोंमेंसे एकका स्थान था। विश्वामित्रका टीला इस शहरका एक और विष्णु-मन्दिर है। राज्य पुरातत्व एजेन्सीने इस स्थानसे कुछ मूर्तियाँ ली हैं। हालाँकि, उनमेंसे कईको आधुनिक मन्दिरों और प्राचीन मन्दिरोंकी दीवारोंपर स्थायी रूपसे चिपका दिया

गया है। नवनिर्मित प्राचीन शिव-मन्दिरके कई प्रवेशद्वारोंपर वर्तमानमें कम-से-कम तीन पत्थरके द्वार मौजूद हैं। इनमेंसे दो विशेषरूपसे महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि वे नवग्रह, सप्तमातृका और देवीके आँकड़े चित्रित करते हैं, गंगा और यमुना, साथ-ही-साथ ललितबिम्बाके ऊपर एक विष्णु छवि, यह दर्शाता है कि यहाँ एक विष्णु-मन्दिर था।

संगमेश्वर-महादेव-मन्दिर (अरुणै)—यह मन्दिर पिहोवासे लगभग ४ किलोमीटरकी दूरीपर अरुणाई शहरके पास अरुणाई और सरस्वती नदियोंके संगमपर स्थित है। महाभारतके अनुसार, चारों देवताओंको यहाँ एक साथ लाया गया था, और यहाँ स्नान करनेसे भक्तोंको सभी पापोंसे मुक्ति मिल सकती है और उन्हें चार हजार अश्वमेध यज्ञोंमें भाग लेनेके बराबर पुण्य प्राप्त होता है। पौराणिक कथाके अनुसार, विश्वामित्र और वसिष्ठ—इन दो उत्कृष्ट ऋषियोंमें भयंकर प्रतिद्वन्द्विता थी। विश्वामित्रने एक बार वसिष्ठकी हत्याके लक्ष्यसे सरस्वतीको अपने आश्रममें बुलाया। सरस्वती वसिष्ठको अपने आश्रममें ले आयीं, लेकिन बादमें उन्होंने 'ब्रह्महत्या' के पापसे बचनेके लिये उन्हें विश्वामित्रके आश्रमसे वापस ले लिया। विश्वामित्र उससे क्रोधित हो गये और उन्हें यह कहते हुए शाप दिया कि उनका पानी खूनी हो जायगा। बादमें पवित्र ऋषियोंने अरुणाई (जो बुरे कार्योंको मिटानेमें सक्षम था)-का पवित्र जल लाकर उसे सरस्वतीमें डाल दिया और सरस्वती एक बार फिर विश्वामित्रके शापके कारण एक वर्षतक पीड़ित होनेके बाद शुद्ध हो गयी। कहा जाता है कि जो कोई भी अरुणाई और सरस्वतीके संगमपर यहाँ स्नान करता है, वह तीन दिनोंके उपवासके बाद सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस स्थलका नाम भगवान् संगमेश्वर महादेवके नामपर रखा गया है; क्योंकि आदिमहदारके वेशमें शिव संगमके पास विराजमान हैं। हर साल शिवरात्रिके अवसरपर यहाँ एक बड़ा मेला लगता है। इस अवसरपर मन्दिर-न्यास तीर्थयात्रियोंके लिये निःशुल्क भोजन और ठहरनेकी व्यवस्था करता है।

कार्तिकेय मन्दिर—पिहोवामें और उसके आसपास कई तीर्थ, घाट और मन्दिर पाये जाते हैं, जो कुरुक्षेत्रसे २७ किलोमीटर पश्चिममें स्थित हैं। यहींपर भगवान् कार्तिकेयका मन्दिर स्थित है। पौराणिक कथाओंके अनुसार भगवान् कृष्णने महाभारत-युद्धमें मारे गये १८ अक्षौहिणी सेनाके लाखों योद्धाओंके सम्मानमें युधिष्ठिरसे दो दीपक जलवाये थे। ये दीपक, जिनके बारेमें कहा जाता है कि तबसे आजतक लगातार प्रज्वलित हैं।

पिहोवा आनेका सबसे अच्छा समय—कुरुक्षेत्र-परिक्रमा-क्षेत्रमें स्थित पिहोवामें अत्यधिक गर्मी पड़ती है, जिससे यह ग्रीष्म ऋतुमें, आम यात्रियोंके लिये अनुपयुक्त हो जाता है। परंतु हिन्दू भक्त यहाँ पूरे साल आते रहते हैं, जो पुराने स्थानोंकी भव्यताका दर्शन करनेका आनन्द लेते हैं। जलवायु परिस्थितियोंके कारण पिहोवाकी यात्राका सबसे अच्छा मौसम सितम्बरसे मार्चके अन्ततकका होता है।

हवाई-मार्गसे—पिहोवाका निकटतम हवाई अड्डा चण्डीगढ़ है, जो लगभग ११० किलोमीटर दूर है। हवाई अड्डेपर पहुँचनेके बाद आप या तो कैब किरायेपर लेकर आ सकते हैं या पिहोवाके लिये बससे आ सकते हैं। चण्डीगढ़से आपको अपनी मंजिलतक पहुँचनेमें करीब २ घण्टेका समय लगेगा।

रेलद्वारा—पिहोवा कुरुक्षेत्र जिलेमें स्थित है और कुरुक्षेत्र जंक्शनके लिये ट्रेन और फिर वहाँसे बस या कैबसे पिहोवातक पहुँचा जा सकता है। कुरुक्षेत्र जंक्शन पिहोवासे लगभग ३० किलोमीटर दूर है।

कारद्वारा पिहोवा जानेके लिये सड़क-मार्गसे यात्रा करना सबसे अच्छा और सुविधाजनक तरीका है। कारसे पिहोवा आसानीसे पहुँचा जा सकता है।

मुक्तिप्रदाता है त्याग और सेवाका बल

(श्रीताराचन्दजी आहूजा)

प्रत्येक मानवकी मौलिक माँग अखण्ड और अनन्त सुखकी है। विषय-वस्तुकी प्राप्ति और अनुकूलतामें तो मानव सुखका अनुभव करता है, पर कुछ छूट जानेपर अथवा प्रतिकूलताकी परिस्थितिमें वह घोर दु:खमें डूब जाता है। बाह्य जगत् परिवर्तनशील है अर्थात् सदैव एक समान रहनेवाला नहीं है, अत: सुख और दु:ख दोनों ही अवस्थाओंका आना-जाना लगा रहता है। इस संसारमें सुख-दु:ख, मान-अपमान, संयोग-वियोगकी स्थितियाँ निरन्तर बनी रहनेवाली हैं। दु:ख आया है, तो जायगा भी अवश्य और यदि मान-सम्मान मिला है, तो कभी-न-कभी अपमान और तिरस्कारका दंश भी अवश्य झेलना पड़ेगा।

महापुरुषोंका कथन है कि वास्तविक सुख संसारके भौतिक पदार्थोंमें नहीं है। शाश्वत और वास्तविक सुख तो वह है, जहाँ सुख और दु:खके बन्धनसे हमारी चेतना मुक्त हो सके; मान और अपमान दोनोंका बन्धन टूट जाय और संयोग-वियोगमें समता प्राप्त हो जाय। परम संत स्वामी शरणानन्दजी महाराज भगवान्‌से विनती करते हुए कहते हैं—'हे मेरे नाथ! आप अपनी सुधामयी, सर्वसमर्थ, पतितपावनी अहैतुकी कृपासे दुखी प्राणियोंके हृदयमें त्यागका बल एवं सुखी प्राणियोंके हृदयमें सेवाका बल प्रदान करें, जिससे वे सुख-दु:खके बन्धनसे मुक्त हो, आपके पवित्र प्रेमका आस्वादनकर कृतकृत्य हो जायँ।'

उपर्युक्त प्रार्थनामें इस स्थितिकी अनुभूतिहेतु एक सुन्दर मार्ग दिया गया है। जो दुखी है उसके लिये त्यागका बल तथा जो सुखी है उसके लिये सेवाका बल ही एकमात्र वह मार्ग है, जिससे दुखी व्यक्ति दु:खके तथा सुखी व्यक्ति सुखके बन्धनसे मुक्त हो सकता है। दुखी व्यक्ति दुखी इसलिये होता है; क्योंकि वह देना नहीं चाहता। इसलिये उसके लिये 'त्यागका बल' कहा गया है। '**त्यागाच्छान्तिः**' अर्थात् त्यागसे शान्ति मिलती है। बिना त्यागके शान्तिका प्राप्त हो पाना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। जिसको ईश्वरकी कृपासे त्यागका बल मिल गया, वह व्यक्ति दु:खके बन्धनसे सदाके लिये मुक्त हो गया; क्योंकि त्यागसे ही वैराग्य मिलता है और त्यागसे ही अनासक्तिका भाव उत्पन्न होता है।

सुखी व्यक्ति यदि सुखसे फूला नहीं समा रहा है, तो यह उसका बड़ा भारी भ्रम है; क्योंकि आज वह जिस सुखसे प्रसन्नताका अनुभव कर रहा है, वह सुख सदैव रहनेवाला नहीं है। प्रकृतिके नियमानुसार वह सुख एक निश्चित अवधिके पश्चात् जीवात्माका साथ छोड़ देगा। ऐसे व्यक्तिके जीवनसे जब सुख विदा होता है, तो निश्चय ही वह दु:खके सागरमें डूब जाता है। इसलिये सुखमें विवेक बना रहे और सुखका बन्धन भी मिट जाय, इसके लिये हमारे धर्मशास्त्रोंमें एक ही उपाय बताया गया है और वह रामबाण उपाय है—सेवा। सेवासे मनुष्यके जीवनमें अहंकारका भाव तिरोहित हो जाता है और उसके स्थानपर विनम्रताका भाव प्रस्फुटित होने लगता है, जिसका प्रभाव यह होता है कि सुखकी स्थिति छिन जानेपर भी वह दुखी नहीं होता। विनम्रताके कारण उसका मानसिक सन्तुलन बना रहता है।

सेवाका अर्थ है दूसरेको सुख पहुँचाना और वह भी बिना किसी प्रतिफल और आशाके। सेवा कहीं भी, किसी भी समय की जा सकती है। भूखेको भोजन कराकर, नंगेको वस्त्र प्रदानकर और रोगीको औषधि सुलभ कराकर सेवाका पुण्य कमाया जा सकता है। सेवा बिना धन खर्च किये भी की जा सकती है। किसी वृद्ध और लाचार व्यक्तिको सहायता देकर भी हम सेवा कर सकते हैं, दुखी व्यक्तिको सान्त्वनाके दो शब्द सुनाकर हम उसके मनको हलका कर सकते हैं।

यदि लक्ष्मी भगवान् विष्णुके चरणोंमें सेवारत है, तो वह प्रभुसे मिलाप करानेवाली है। अर्थात् यदि धन भगवान्‌की सेवामें लगता है, तो वह सुख प्रदान करता हुआ जीवको देहके बन्धनसे भी मुक्त कर देता है। इसके

विपरीत यदि धन प्रभुकी सेवामें नहीं लगा, तो वह धन निरर्थक ही नहीं, घोर नरकोंमें भी डालनेका सबब बन जायगा। ईश्वरकी सेवामें लगाया गया धन मुक्तिका द्वार खोलता है और हमारे अन्दर उदारता एवं प्रसन्नताका भाव भी पैदा करता है। वह हमें कितना उदार बना सकता है, इस बातको एक बोधकथाद्वारा सरलतासे समझा जा सकता है।

एक बार एक धनवान् व्यक्ति ईश्वरदर्शनहेतु अपने घरसे देवालयकी ओर चला। रास्तेमें उसने सोचा कि आज वह भगवान्‌को कमलका पुष्प अर्पितकर प्रसन्न करेगा। दैवयोगसे उसे एक फूलवाला मिल भी गया। उसने फूलवालेसे पूछा—'क्या लोगे एक फूलका?' फूलवालेने कहा—'बीस रुपये।' सेठने कहा—'दस रुपये ले लो।' फूलवाला दस रुपये लेनेको तैयार हो गया। इधर उसी समय एक नवाब अपनी प्रेयसीके साथ उधरसे गुजरा। प्रेयसीने वही फूल लेनेकी इच्छा जतायी। फूलवालेने फिर बीस रुपयेमें फूल देनेकी बात कही। नवाब पचास रुपये देनेके लिये उद्यत हो गया। तब सेठने फूलवालेसे कहा—'भाई! यह फूल तुमने मुझे दस रुपयेमें बेच दिया है, अब तुम यह फूल इन्हें कैसे दे सकते हो?' फूलवालेने कहा—'मैंने अभीतक यह फूल आपको दिया नहीं है। मुझे तो जो अधिक दाम देगा, मैं उसीको ही यह फूल दूँगा।' तब सेठने कहा—'अच्छा! मैं इस फूलके आपको सौ रुपये देता हूँ।' नवाबने कहा—'मैं आपको पाँच सौ रुपये देता हूँ, फूल मुझे मिलना चाहिये।' सेठने उससे भी ऊँची कीमत अदा करनेकी बात कहते हुए एक हजार रुपयेमें फूल लेनेका प्रस्ताव रखा। लेकिन नवाब कहाँ पीछे हटनेवाला था। उसने फूलकी बोली पाँच हजार रुपये लगा दी। तब सेठने भी जोशमें आकर दस हजार रुपये देनेकी बात कही। यह सुनते ही नवाब अपनी प्रेयसीको लेकर वहाँसे चल दिया और सेठने दस हजार रुपयेमें वह फूल खरीद लिया।

वहाँपर खड़े एक व्यक्तिने सेठसे पूछा—'भाई! जिस फूलके आप पहले बीस रुपये देनेको तैयार नहीं थे, उसके लिये आपने दस हजार रुपये क्यों दिये?' जिदमें आकर एक फूलके दस हजार रुपये देना तो कोई समझदारी नहीं है। सेठने कहा—'इस सौदेसे मुझे जो सबक मिला है, उसकी कीमत दस हजार रुपयेसे भी कहीं अधिक है। मैंने आज यह जाना कि एक दिनकी खुशीके लिये नवाब यदि पाँच हजार रुपये खर्च कर सकता है तो क्या मैं अपने दातारको प्रसन्न करनेके लिये उसकी सेवामें दस हजार भी नहीं खर्च कर सकता। जिसने मुझे करोड़ों रुपये देकर मालामाल कर रखा है।' आज सेठ महँगा फूल लेकर भी इतना अधिक प्रसन्नचित्त था, जितना वह पहले कभी नहीं था; क्योंकि आज उसने भगवान्‌की कृपाका अहसास अपने अन्तःकरणसे कर लिया था। कहनेका तात्पर्य यह है कि सेवाका भाव मनुष्यको इतना उदार और प्रसन्नचित्त कर देता है कि वह कुछ भी करनेके लिये तत्पर हो जाता है।

धर्मशास्त्रोंके कथनानुसार दीन-हीन और दुखी जीवोंकी सेवा करना मनुष्यका परमधर्म है। वह तन-मन-धनसे जितनी सेवा करता है, उसे उतनी ही अधिक प्रसन्नता और भगवान्‌की कृपा प्राप्त हो जाती है; क्योंकि भगवान् दीनोंमें अधिक रहता है। इसीलिये उसे दीनानाथ भी कहा जाता है। सेवा जहाँ व्यक्तिके मनको निर्मल और पवित्र करती है, वहीं उसको सुख और दुःखके बन्धनसे भी मुक्त कर देती है। जब कोई दुखी व्यक्ति दुःखके तथा सुखी व्यक्ति सुखके बन्धनसे मुक्त हो जाता है तो वह भगवान्‌के पवित्र प्रेमका आस्वादन करनेके योग्य बन जाता है। महापुरुषोंका कथन है कि जहाँ बन्धन नहीं है, वहीं ईश्वर है, वहीं प्रभु-प्रेमकी दिव्य गंगा प्रवाहित होती है, जिसमें अवगाहनकर साधक कृतकृत्य हो जाता है। इसलिये सन्त और शास्त्र कहते हैं कि त्याग और सेवा मुक्तिके अमोघ साधन हैं। इनका आश्रय लेना चाहिये ताकि मनुष्य जीवनकी सार्थकताको प्राप्त किया जा सके।

सन्त-चरित—

दक्षिणके सन्त श्रीराघवेन्द्र स्वामी

(श्रीराघवेन्द्रश्रीधरजी राव)

श्रीराघवेन्द्रस्वामीका जन्म मृगशिरा नक्षत्र, फाल्गुन शुक्ल सप्तमी शुक्रवार मन्मथ संवत् सन् १५९५ ई० में हुआ। इनकी माताका नाम गोपीकाम्बा और पिताका नाम थिमण्णाभट्ट था। यह पुत्र जो कि भगवान् वेंकटेशकी कृपासे पैदा हुआ था, उसका नाम पिताने वेंकटनाथ रखा।

वेंकटनाथ कुशाग्र बुद्धिके थे। उन्होंने छोटी उम्रमें ही वेद-वेदान्त, कविता और अमरकोषमें महारत हासिल कर ली। अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करनेके बाद वेंकटनाथ कुम्भकोणम् मठ आये, जहाँ इन्होंने उच्च शिक्षा अपने कुलगुरु श्रीसुधीन्द्रतीर्थसे प्राप्त की।

अपने गुरुके पास रहकर वेंकटनाथने विज्ञान, वेदान्तशास्त्र, व्याकरण इत्यादिमें महारत हासिल कर ली। वे तैराकी और वीणावादनमें भी अग्रणी थे। इतना सब जाननेके बाद भी वे बहुत विनम्र और मृदुभाषी थे। गुरुने वेंकटनाथको 'परिमलाचार्य' की उपाधि दी।

ऐसे ही समय बीतता गया। वेंकटनाथने अपनी पढ़ाई पूरी कर ली। इनके बड़े भाई गुरुराजाचार्यकी मददसे इनकी शादी सरस्वती नामकी लड़कीसे सम्पन्न हुई। गृहस्थी श्रीहरिके नाम-जप और पूजा-पाठमें गुजरी। श्रीहरिकी कृपासे वेंकटभट्ट और सरस्वतीदेवीको एक लड़का हुआ, जिसका नाम नवदम्पतीने लक्ष्मीनारायण रखा।

शीघ्र ही श्रीसुरेन्द्रतीर्थकी उम्र हो गयी। उनके मनमें आया कि अपना कार्यभार किसीको सौंप दें। एक रातको सपनेमें उनको उनके आराध्य देवता श्रीमूलरामचन्द्रजीके दर्शन हुए और उन्होंने आज्ञा दी कि श्रीसुरेन्द्रतीर्थ वेंकटभट्टाचार्यको संन्यासकी दीक्षा दें और सारा कार्यभार उनको सौंपकर वेंकटभट्टको पीठाधिपति बनायें। जब यह सपनेका पूरा वृत्तान्त वेंकटभट्टको सुनाया गया तो इतनी बड़ी जिम्मेदारी लेनेके लिये पहले तो वे राजी नहीं हुए, पर बादमें इसे श्रीहरिकी इच्छा जानकर उन्होंने स्वीकृति दे दी।

तत्पश्चात् तंजौरके महलमें विद्वानों और अनेक भक्तोंके समक्ष फाल्गुन शुक्ल द्वादशी दुर्मतीनाम संवत्सर सन् १६२१ ई० को श्रीसुरेन्द्रतीर्थने वेंकटभट्टको संन्यास-आश्रममें दाखिल किया और उनका नाम श्रीराघवेन्द्रतीर्थ रखा।

अपने कार्यकालमें श्रीराघवेन्द्र स्वामीने अनगिनत चमत्कार किये। उनमेंसे दोका उल्लेख किया जाता है। श्रीस्वामीजी अनेक स्थानोंकी यात्रा करते रहते थे। जब वे आदोनी गये तो उनकी सेवा एक अनाथ लड़के वेंकण्णाने की। श्रीस्वामीने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि विपत्तिके समय मुझे याद करना। एक बार आदोनीका नवाब सिद्दी मसूदखान उसी ओर जा रहा था, जिधर वेंकण्णाका गाँव पड़ता था। उसी समय एक पत्रवाहकसे कुछ संदेश मिला। उसे नवाब और उसके सैनिक कोई भी पढ़ नहीं सकते थे; क्योंकि वे अनपढ़ थे। नवाबने पास ही खड़े वेंकण्णाको बुलाया और कहा इस संदेशको पढ़ो। वेंकण्णा अनपढ़ गँवार था। उसे कन्नड़का एक अक्षर भी नहीं आता था। वह घबरा गया। उसने श्रीराघवेन्द्र स्वामीको याद किया। अचानक सारी भाषाएँ उसके लिये ज्ञेय हो गयीं। उसने फरमान

नवाबको पढ़कर सुनाया। नवाबने खुश होकर वेंकण्णाको 'दीवान' बना दिया।

वेंकण्णा जो अब दीवान बन गये थे, नवाबसे श्रीराघवेन्द्र स्वामीकी बहुत बड़ाई करते थे। नवाबने सोचा कि क्यों न श्रीस्वामीजीकी परीक्षा ली जाय। नवाब तो कुटिल था। उसने एक टोकरीमें माँस, मछली और शराब रख दिया और उसे कपड़ेसे ढककर श्रीस्वामीके सामने पेश किया। श्रीराघवेन्द्र स्वामी समझ गये। उन्होंने शंखमें जल भरकर उस टोकरेपर छिड़क दिया। नवाबने जब टोकरेपरसे कपड़ा हटाया तो क्या देखते हैं कि टोकरेमें केवल फल और फूल हैं। नवाब बहुत शर्मिन्दा हुआ। उसने श्रीराघवेन्द्र स्वामीको दण्डवत् नमस्कार किया और माफी माँगी। उस नवाबने प्रसन्न होकर श्रीराघवेन्द्र स्वामीको मंचाली नामक गाँव दानमें दे दिया।

श्रीस्वामीजीकी इच्छा हुई कि वे अपने अन्तिम दिन मन्त्रालयमें गुजारें। उन्होंने मंचालीमें श्रीवेंकटेश्वरका मन्दिर बनवाया। उन्होंने वेंकण्णाको वह जगह बतायी, जहाँ वृन्दावनका निर्माण करना है, जहाँ वे समाधि लेंगे।

आखिर वह नियत तारीख आ ही गयी। ठीक शुक्रवार, श्रावणमास, विरोधीकृत संवत्सर सन् १६७१ ई० को श्रीराघवेन्द्र स्वामीने वृन्दावनमें प्रवेश किया और जीवित समाधि ली।

गो-चिन्तन—

बन्धनमुक्त गाय स्वस्थ और दुधार होती है

(श्रीमुल्कराजजी विरमानी)

दिल्लीके कई गाँवोंमें लोग एक या दो गायें पालते हैं, परंतु स्थानके अभावमें वे गायोंको सदैव बाँधकर रखते हैं। दिल्लीके कोटला और डिफेन्स कॉलोनीके बीचके डिवाइडरपर आस-पासकी सभी गायें आकर बैठती हैं। दस गायोंमेंसे लगभग दो-तीन गायें जुगाली कर रही होती हैं। इसका मतलब है कि शेष सात गायें खाली पेट होती हैं और वहाँपर आने-जानेवाले कुछ लोग एक-आध रोटीका टुकड़ा उनको डाल देते हैं, तो इसीसे उनका जीवन-यापन होता है। अगर इनमें कोई गाय कोटलाके बाजारमें बैठ जाय तो वहाँका दुकानदार उसे डण्डेसे मारकर भगा देता है।

मैंने पी०डब्लू०डी० वालोंसे कहा कि यहाँ डिवाइडरमें और पेड़ लगा दीजिये, ताकि गायको धूपकी यातना न सहनी पड़े। उन्होंने लगाये भी, लेकिन पानी न मिलनेके कारण सभी पेड़ जल गये।

गाय दुखी है—दिल्लीमें गायोंकी स्थिति देखनेके लिये मैं अक्सर गाँवोंमें भ्रमण करता रहता हूँ। गौतम नगर एक बहुत बड़ा गाँव है, जहाँ गुरुकुल नामक विशाल विद्यालयमें थोड़ा-सा स्थान उन्होंने गायोंके पालनके लिये रखा हुआ है। वहाँ लगभग पन्द्रह गायें हैं। गर्मियोंमें जब सूर्यदेव अपने चरमपर होते हैं तो गायोंको अन्दर बाँधनेकी एक प्रकारकी व्यवस्था है। चौदह फुटकी लम्बाईमें छः या सात गायें बाँध देते हैं, उनके पेट आपसमें टकराते हैं और ऐसी स्थितिमें बैठनेका तो सवाल ही पैदा नहीं होता। बेचारी गाय धूपके समाप्त होनेपर बाहर लाकर बाँध दी जाती है। अन्दर बँधी गाय न तो कुछ खा सकती है और न पी ही सकती है। विश्रामका तो सवाल ही पैदा नहीं होता। अन्दर भी बँधी है और बाहर भी बँधी ही रहती है। हम तो कह देते हैं—इनका करम ही ऐसा है। परंतु यह सत्य नहीं है। वास्तवमें हम ही इतने क्रूर हो गये हैं कि न तो दो-चार पेड़ लगाकर गायको छाया देते हैं, न ही खानेको ठीक व्यवस्था करते हैं। मैंने व्यवस्थापकसे विनय की कि आपके पास गायको घुमानेके लिये इतना बड़ा स्थान है, आप दो-दो या तीन-तीन गायको ले जाकर घुमाइये, घुमाते क्यों नहीं हैं? उन्होंने उत्तर तो नहीं दिया और मेरी तरफ देखकर कह दिया—प्रयत्न करेंगे। पर कोई प्रयत्न नहीं हुआ।

दिल्लीमें ही आर० के० पुरम्में 'विश्व हिन्दू परिषद्' का बहुत बड़ा कार्यालय है। उन्होंने सूझ-बूझके साथ गायोंको इस ढंगसे रखा है कि यदि फल या रोटी खिलानेवाले गोभक्त आयें और काफी दूरसे गायको खानेके लिये बुलायें तो वे भागकर वहाँ चली जायँगी। वहाँ गाय बाँधते नहीं,

इसलिये बाकी गौशालाओंकी तुलनामें गाय कमजोर भी नहीं हैं। वहाँ भी बहुत लोग आते हैं और रोटी, सब्जी, केला इत्यादि गायोंको खिलाते हैं।

एक प्रकारसे अच्छा ही हुआ कि दिल्लीकी कार्पोरेशन्सने घूमती हुई गायोंको पकड़कर दूर गौ-शालाओंमें देनेका प्रबन्ध कर दिया है। इसीलिये कोटलाको छोड़कर बाकी विभिन्न कॉलोनियोंमें गायोंका घूमना अब सम्भव नहीं है। मैंने नोएडा और गौतम नगरकी गौशालाको भली-भाँति देखा और समझा। वहाँपर गायोंके सुन्दर और खुले स्थान बन सकते हैं जिसमें गायें स्वतन्त्रतासे घूमें और लोग भी आकर उन्हें खिलाना चाहें तो वे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँच सकती हैं। इससे गायोंका स्वास्थ्य भी अच्छा होगा और दूधमें भी बढ़ोतरी होगी।

गायोंको स्वस्थ साँड़से क्रॉस कराना चाहिये— एक गाँवमें तो देशी गउओंकी लगभग कोई किस्म ही नहीं है। जैसे देशकी जानी-मानी किस्में—गीर, राठी, साहीवाल, थारपारकर, कपिला, स्वर्ण कपिला इत्यादि। लगभग सारे गोपालक इसका महत्त्व भी बहुत कम जानते हैं। हरियाणाकी एक महिला गोपालकके पास सौके लगभग विभिन्न नस्लोंकी गायें हैं। वे गायोंको नस्लके अनुसार क्रास कराती हैं, फलतः प्रजाति तो सुरक्षित रहती ही है, दुग्ध-उत्पादन भी पर्याप्त होता है। गौतम नगरके एक महात्मा गोपालक तो बड़ी धीमी आवाजमें कहते हैं—हमारी गायें तो मिली-जुली हैं, हमें नस्ल-सुधारका समय नहीं है। बरसोंसे जबसे जंगल खेतोंमें परिवर्तित होने लगे, गायोंके चरनेके चरागाह कम हुए, तो उन्हें चरानेकी जो एक सुन्दर प्रथा थी, वह भी कम होते-होते समाप्त-सी हो गयी।

दिल्लीसे फरीदाबाद जानेके लिये मथुरा रोडके अतिरिक्त एक ब्रिज भी है, जहाँ एक बड़ी गोशालाकी गायोंका दूध निकालकर उन्हें छोड़ दिया जाता है। वे सड़कपर आ जाती हैं और कारों, स्कूटरों आदिसे आने-जानेवाले लोगोंसे कुछ रोटी आदि खिलानेकी आशामें खड़ी रहती हैं। इस गोशालाका संचालन फरीदाबाद और अन्य स्थानोंके धनी-मनी लोग करते हैं, लेकिन किसीको समय नहीं कि आपसमें मिलकर गोशालाके सुधारपर चर्चा करें। मेरा अनुभव है कि गायोंको गोशालामें थोड़ी मात्रामें खली, चनेका आटा और हरा चारा दिया जाय तो उनके दूधमें वृद्धि हो सकती है, इससे गायोंकी दूध देनेकी क्षमता बढ़ेगी और उनके बछिया-बछड़ोंको थोड़ा-सा अधिक दूध भी मिलेगा, जिससे वे भी आगे चलकर गायोंकी नस्लोंमें सुधार करेंगे। इन गोशालाओंमें मैंने देखा कि गौमूत्रको फिल्टर करनेका बहुत सुन्दर प्लाण्ट भी रखा है, परंतु दुःखकी बात है कि प्लाण्टके पाइप इधर-उधर बिखरे पड़े हैं और उनपर गीले कपड़ोंको सुखानेका काम लिया जा रहा है। फिल्टर किया हुआ गो-मूत्र बहुत-सी बीमारियोंका उपचार कर सकता है। परंतु इसके लिये लोगोंको अवगत करानेकी आवश्यकता है। अवगत तो कराया नहीं और उसके पार्ट्स बिखेरकर रख दिये।

मेरा गोशालाओंसे अनुरोध है कि गायोंकी नस्लोंका सुधार तो करें ही, साथमें गायोंको बन्धनसे मुक्तकर खुला रहने और चरनेकी व्यवस्था भी करें।

गाश्च शुश्रूषते यश्च समन्वेति च सर्वशः। तस्मै तुष्टाः प्रयच्छन्ति वरानपि सुदुर्लभान्॥
द्रुह्येन्न मनसा वापि गोषु नित्यं सुखप्रदः। अर्चयेत सदा चैव नमस्कारैश्च पूजयेत्॥
दान्तः प्रीतमना नित्यं गवां व्युष्टिं तथाश्नुते।

'जो पुरुष गौओंकी सेवा करता है और सब प्रकारसे उनका अनुगमन करता है, उसपर सन्तुष्ट होकर गौएँ उसे अत्यन्त दुर्लभ वर प्रदान करती हैं। गौओंके साथ मनसे भी कभी द्रोह न करे, उन्हें सदा सुख पहुँचाये, उनका यथोचित सत्कार करे और नमस्कार आदिके द्वारा उनका पूजन करता रहे। जो मनुष्य जितेन्द्रिय और प्रसन्नचित्त होकर नित्य गौओंकी सेवा करता है, वह समृद्धिका भागी होता है।'

सुभाषित-त्रिवेणी

मूढ़की पहचान
[How to identify an Idiot]

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः॥

बिना पढ़े ही गर्व करनेवाले, दरिद्र होकर भी बड़े-बड़े मनसूबे बाँधनेवाले और बिना काम किये ही धन पानेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको पण्डितलोग मूर्ख कहते हैं।

"The Panditas call a man a fool who although illiterate thinks too much of himself and who though a pauper dreams rich. Such a fool desires to grow rich without effort.

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते॥

जो अपना कर्तव्य छोड़कर दूसरेके कर्तव्यका पालन करता है तथा मित्रके साथ असत् आचरण करता है, वह मूर्ख कहलाता है।

"The fool deserts his duty and looks after the interest of others. His conduct towards his friends is deceitful.

अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत्।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम्॥

जो न चाहनेवालोंको चाहता है और चाहने-वालोंको त्याग देता है तथा जो अपनेसे बलवान्के साथ बैर बाँधता है, उसे 'मूढ़ विचारका मनुष्य' कहते हैं।

"He is called an idiot who befriends undesirable persons and who shuns those whose company he ought to seek. For no rhyme or reason he courts enmity of the powerful.

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम्॥

जो शत्रुको मित्र बनाता और मित्रसे द्वेष करते हुए उसे कष्ट पहुँचाता है तथा सदा बुरे कर्मोंका आरम्भ किया करता है, उसे 'मूढ़ चित्तवाला' कहते हैं।

"Unjustifiably, he makes enemies of friends while trying to befriend his enemies. He harms his friends for no reason. He is such a fool that he invariably sets out on the wrong path.

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ॥

भरतश्रेष्ठ! जो अपने कामोंको व्यर्थ ही फैलाता है, सर्वत्र सन्देह करता है तथा शीघ्र होनेवाले काममें भी देर लगाता है, वह मूढ़ है।

"O descendent of Bharata! He is stupid who unnecessarily expands the scope of his activity, who doubts everyone's intentions and who delays what can be completed in a short while.

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि न चार्चति।
सुहृन्मित्रं न लभते तमाहुर्मूढचेतसम्॥

जो पितरोंका श्राद्ध और देवताओंका पूजन नहीं करता तथा जिसे सुहृद् मित्र नहीं मिलता, उसे 'मूढ़ चित्तवाला' कहते हैं।

"He is deficient in intellect who does not perform Sraddha for his ancestors and who does not worship the Devatas. He is unable to make sincere friends.

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः॥

मूढ़ चित्तवाला अधम मनुष्य बिना बुलाये ही भीतर चला आता है, बिना पूछे ही बहुत बोलता है तथा अविश्वसनीय मनुष्योंपर भी विश्वास करता है।

"He enters a house or Court uninvited and speaks much when not even asked to do so. Such a lowly fool trusts the most untrustworthy persons.

[विदुरनीति १। ३५—४१]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, शरदृ्ऋतु, कार्तिक-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १।४७ बजेतक	सोम	रेवती सायं ५।१० बजेतक	१० अक्टूबर	**मेषराशि** सायं ५।१० बजेसे, **पंचक समाप्त** सायं ५।१० बजे।
द्वितीया ,, १।४० बजेतक	मंगल	अश्विनी ,, ५।३१ बजेतक	११ ,,	**मूल** सायं ५।३१ बजेतक, **चित्रामें सूर्य** सायं ४।२९ बजे।
तृतीया ,, २।४ बजेतक	बुध	भरणी रात्रिमें ६।२२ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें १।५२ बजेसे रात्रिमें २।४ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें १२।४२ बजेसे।
चतुर्थी ,, २।५८ बजेतक	गुरु	कृत्तिका ,, ७।४३ बजेतक	१३ ,,	**संकष्टी (करवाचौथ) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ७।५३ बजे।
पंचमी ,, ४।२० बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, ९।३२ बजेतक	१४ ,,	× × × × ×
षष्ठी रात्रिशेष ६।६ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, ११।४४ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ६।६ बजेसे, **मिथुनराशि** दिनमें १०।३८ बजेसे।
सप्तमी अहोरात्र	रवि	आर्द्रा ,, २।११ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।६ बजेतक।
सप्तमी दिनमें ८।६ बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,, ४।४९ बजेतक	१७ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें १०।१० बजेसे, **अहोईव्रत।**
अष्टमी ,, १०।१३ बजेतक	मंगल	पुष्य अहोरात्र	१८ ,,	**तुला संक्रान्ति** दिनमें ९।४० बजे।
नवमी ,, १२।१७ बजेतक	बुध	पुष्य प्रातः ७।२५ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।११ बजेसे, **मूल** प्रातः ७।२५ बजेसे।
दशमी ,, २।५ बजेतक	गुरु	आश्लेषा दिनमें ९।४८ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** दिनमें २।५ बजेतक, **सिंहराशि** दिनमें ९।४८ बजेसे।
एकादशी ,, ३।३२ बजेतक	शुक्र	मघा ,, ११।५२ बजेतक	२१ ,,	**रम्भा एकादशीव्रत** (सबका), **गोवत्सद्वादशी, मूल** दिनमें ११।५२ बजेतक।
द्वादशी सायं ४।३२ बजेतक	शनि	पू०फा० ,, १।२९ बजेतक	२२ ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें ७।४७ बजेसे, **शनिप्रदोषव्रत, धनत्रयोदशी (धनतेरस)।**
त्रयोदशी ,, ५।४ बजेतक	रवि	उ०फा० ,, २।३८ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** सायं ५।४ बजेसे रात्रिशेष ५।४ बजेतक, **धन्वन्तरि-जयंती, नरकचतुर्दशी, हनुमज्जयन्ती।**
चतुर्दशी ,, ५।३ बजेतक	सोम	हस्त ,, ३।१८ बजेतक	२४ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ३।२२ बजेसे, **दीपावली, स्वातीका सूर्य** रात्रिमें २।९ बजे।
अमावस्या सायं ४।३४ बजेतक	मंगल	चित्रा ,, ३।२८ बजेतक	२५ ,,	**भौमवती अमावस्या, सूर्यग्रहण।**

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, शरदृ्ऋतु, कार्तिक-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३।२५ बजेतक	बुध	स्वाती दिनमें ३।९ बजेतक	२६ अक्टूबर	**अन्नकूट, काशीसे अन्यत्र गोवर्धनपूजा।**
द्वितीया ,, २।१२ बजेतक	गुरु	विशाखा ,, २।२६ बजेतक	२७ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें ८।३८ बजेसे, **काशीमें गोवर्धन पूजा, भातृद्वितीया (भैयादूज), यमद्वितीया।**
तृतीया ,, १२।२९ बजेतक	शुक्र	अनुराधा ,, १।२४ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।२९ बजेसे, **श्रीवैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** दिनमें १।२४ बजेसे।
चतुर्थी ,, १०।२८ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा ,, १२।५ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।२८ बजेतक, **धनुराशि** दिनमें १२।५ बजेसे।
पंचमी दिनमें ८।१५ बजेतक	रवि	मूल ,, १०।३४ बजेतक	३० ,,	**श्रीसूर्यषष्ठीव्रत, मूल** दिनमें १०।३४ बजेतक।
सप्तमी रात्रिमें ३।३० बजेतक	सोम	पू०षा० ,, ८।५६ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।३० बजेसे, **मकरराशि** दिनमें २।२९ बजेसे।
अष्टमी ,, १।८ बजेतक	मंगल	उ०षा० प्रातः ७।१४ बजेतक	१ नवम्बर	**भद्रा** दिनमें २।१९ बजेतक, **गोपाष्टमी।**
नवमी ,, १०।५३ बजेतक	बुध	धनिष्ठा रात्रिमें ४।६ बजेतक	२ ,,	**कुम्भराशि** सायं ४।५२ बजेसे, **पंचकारम्भ** सायं ४।५२ बजे, **अक्षयनवमी।**
दशमी ,, ८।५० बजेतक	गुरु	शतभिषा ,, २।४९ बजेतक	३ ,,	× × × × ×
एकादशी ,, ७।२ बजेतक	शुक्र	पू०भा० ,, १।४९ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** प्रातः ७।५६ बजेसे रात्रिमें ७।२ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें ८।४ बजेसे, **प्रबोधिनी एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी सायं ५।३५ बजेतक	शनि	उ०भा० ,, १।१० बजेतक	५ ,,	**शनिप्रदोषव्रत, तुलसीविवाह।**
त्रयोदशी ,, ४।३३ बजेतक	रवि	रेवती ,, १२।५५ बजेतक	६ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें १२।५५ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिमें १२।५५ बजे, **वैकुण्ठचतुर्दशीव्रत।**
चतुर्दशी ,, ३।५८ बजेतक	सोम	अश्विनी ,, १।८ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।५८ बजेसे रात्रिमें ३।५५ बजेतक, **व्रतपूर्णिमा, विशाखाका सूर्य** दिनमें ९।१७ बजे।
पूर्णिमा ,, ३।५३ बजेतक	मंगल	भरणी ,, १।५२ बजेतक	८ ,,	**कार्तिक पूर्णिमा, गुरुनानक जयन्ती, कार्तिक-स्नान समाप्त, चन्द्रग्रहण।**

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-हेमन्तऋतु, मार्गशीर्ष-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ४। २० बजेतक	बुध	कृत्तिका रात्रिमें ३। ६ बजेतक	९ नवम्बर	**वृषराशि** दिनमें ८। १० बजेसे।
द्वितीया ,, ५। १७ बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, ४। ५७ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ५। ५९ बजेसे।
तृतीया रात्रिमें ६। ४२ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा अहोरात्र	११ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ६। ४२ बजेतक, **मिथुनराशि** सायं ५। ५१ बजेसे।
चतुर्थी ,, ८। २९ बजेतक	शनि	मृगशिरा प्रातः ६। ५४ बजेतक	१२ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। ६ बजे।
पंचमी ,, १०। ३२ बजेतक	रवि	आर्द्रा दिनमें ९। १९ बजेतक	१३ ,,	**कर्कराशि** रात्रिशेष ५। १५ बजेसे।
षष्ठी ,, १२। ४१ बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,, ११। ५४ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२। ४१ बजेसे।
सप्तमी ,, २। ४६ बजेतक	मंगल	पुष्य ,, २। ३० बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें १। ४४ बजेतक, **मूल** दिनमें २। ३० बजेसे।
अष्टमी ,, ४। ३६ बजेतक	बुध	आश्लेषा सायं ४। ५७ बजेतक	१६ ,,	**सिंहराशि** सायं ४। ५७ बजेसे, **भैरवाष्टमी)**।
नवमी रात्रिशेष ६। ४ बजेतक	गुरु	मघा रात्रिमें ७। ६ बजेतक	१७ ,,	**वृश्चिकसंक्रान्ति** प्रातः ७। ११ बजे, **हेमन्तऋतु प्रारम्भ, मूल** रात्रिमें ७। ६ बजेतक।
दशमी अहोरात्र	शुक्र	पू०फा० ,, ८। ४९ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ६। ३५ बजेसे, **कन्याराशि** रात्रिमें ३। ८ बजेसे।
दशमी प्रातः ७। ६ बजेतक	शनि	उ०फा० ,, १०। ७ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** प्रातः ७। ६ बजेतक।
एकादशी ,, ७। ३७ बजेतक	रवि	हस्त ,, १०। ५३ बजेतक	२० ,,	**उत्पन्ना एकादशीव्रत (सबका), अनुराधाका सूर्य** दिनमें २। १२ बजे।
द्वादशी ,, ७। ३७ बजेतक	सोम	चित्रा ,, ११। १० बजेतक	२१ ,,	**तुलाराशि** दिनमें ११। २ बजेसे, **सोमप्रदोषव्रत**।
त्रयोदशी ,, ७। ६ बजेतक	मंगल	स्वाती ,, १०। ५७ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** प्रातः ७। ६ बजेसे रात्रिमें ६। ३७ बजेतक, **सायन धनुका सूर्य** रात्रिमें २। ३ बजे।
अमावस्या रात्रिमें ४। ४६ बजेतक	बुध	विशाखा ,, १०। २० बजेतक	२३ ,,	**वृश्चिकराशि** सायं ४। २९ बजेसे, **अमावस्या**।

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्तऋतु, मार्गशीर्ष-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३। २ बजेतक	गुरु	अनुराधा रात्रिमें ९। २३ बजेतक	२४ नवम्बर	**मूल** रात्रिमें ९। २३ बजेसे।
द्वितीया ,, १। ३ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,, ८। ७ बजेतक	२५ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें ८। ७ बजेसे।
तृतीया ,, १०। ५० बजेतक	शनि	मूल ,, ६। ३८ बजेतक	२६ ,,	**मूल** रात्रिमें ६। ३८ बजेतक।
चतुर्थी ,, ८। ३१ बजेतक	रवि	पू०षा० सायं ५। १ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ४१ बजेसे रात्रिमें ८। ३१ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें १०। ३६ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत**।
पंचमी ,, ६। ८ बजेतक	सोम	उ०षा० दिनमें ३। २० बजेतक	२८ ,,	**श्रीरामविवाह**।
षष्ठी दिनमें ३। ४८ बजेतक	मंगल	श्रवण ,, १। ४१ बजेतक	२९ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें १२। ५५ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १२। ५५ बजे।
सप्तमी ,, १। ३६ बजेतक	बुध	धनिष्ठा ,, १२। ९ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें १। ३६ बजेसे रात्रिमें १२। ३५ बजेतक।
अष्टमी ,, ११। ३४ बजेतक	गुरु	शतभिषा ,, १०। ४७ बजेतक	१ दिसम्बर	**मीनराशि** रात्रिमें ३। ५८ बजेसे।
नवमी ,, ९। ४९ बजेतक	शुक्र	पू०भा० ,, ९। ४३ बजेतक	२ ,,	**महानन्दानवमी**।
दशमी ,, ८। २५ बजेतक	शनि	उ०भा० ,, ८। ५८ बजेतक	३ ,,	**मूल** दिनमें ८। ५८ बजेसे, **भद्रा** रात्रिमें ७। ५४ बजेसे, **ज्येष्ठामें सूर्य** सायं ५। २४ बजे।
एकादशी प्रातः ७। २४ बजेतक	रवि	रेवती ,, ८। ३६ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** प्रातः ७। २४ बजेतक, **मेषराशि** दिनमें ८। ३६ बजेसे, **मोक्षदा एकादशीव्रत (सबका), गीताजयन्ती, पंचक समाप्त** दिनमें ८। ३६ बजे।
द्वादशी ,, ६। ५२ बजेतक	सोम	अश्विनी ,, ८। ४३ बजेतक	५ ,,	**मूल** दिनमें ८। ४३ बजेतक, **सोमप्रदोषव्रत**।
त्रयोदशी ,, ६। ५० बजेतक	मंगल	भरणी ,, ९। १८ बजेतक	६ ,,	**वृषराशि** दिनमें ३। ३५ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ७। २१ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, १०। २४ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** प्रातः ७। २१ बजेसे रात्रिमें ७। ५१ बजेतक, **व्रत-पूर्णिमा**।
पूर्णिमा दिनमें ८। २१ बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, ११। ५८ बजेतक	८ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें १२। ५९ बजेसे, **पूर्णिमा**।

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७८ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७९ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ६३,८२,३१,३०० (तिरसठ करोड़, बयासी लाख, इकतीस हजार तीन सौ)।

(ख) नाम-संख्या १०,२१,१७,००,८०० (दस अरब, इक्कीस करोड़, सत्रह लाख, आठ सौ)।

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, फ्रामिंघम, मलेसिया, मेलबोर्न, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड किंगडम, सिंगापुर, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंजनु, अंता, अंतुरा, अंदौली, अंधराराठी, अंधेरी, अंबाला, अकबरपुर, अकोला, अचारपुरा, अजन्ता सोसाइटी, अन्दौली, अजमेर, अमनाडकला, अमरवाड़ा, अमरसर, अमरावती, अमरावतीघाट, अमृतसर, आनी, अरनियाजोशी, अलवर, अलीगढ़, अलीपुर, अलीपुरकला, अवराइन, असोहा, अहमदाबाद, आंजना, आकोट, आगरा, आडंद, आनन्दनगर, आनेट, आमळा, आला [नेपाल], आवसर, आष्टा, इंदिरानगर, इंदौली, इंदौर, इचलकरंजी, इजोत, इन्दरवास, इलाहाबाद, उज्जैन, उदयपुर, उधमपुर, उमरिया, उमरीयेवदा, उल्हासनगर, उस्मानाबाद, उसरी, ऋषिकेश, ओराडसकरी, ओबरा, औराइन, कघारा, कछुआ, कटक, कटघर, कठुआ, कथैया, कन्याना, करजगाँव, करनभाऊ, करनाल, करही (शुक्ल), करुलिया, करैया जागीर, कर्नाटक, कर्मचारीनगर, कलकत्ता, कल्याण, कसारीडीह, काँकरोली, काँगड़ा, काकोली, काटोल, काठमांडो, कानपुर, कानड़ी, कामठी, कामर, कालियागंज, कालूखाँड़, कासिमबाजार, किरारी, किसनगंज, कुकरा, कुक्षी, कुचामनसिटी, कुटासा, कुठेड़ा, कुनिहार, कुन्हील पनेरा, कुरमापाली, कुर्मीचक, कुरुक्षेत्र, कुरुसेंडी, कुलना, कृष्णनगर, केंकरा, केशवनगर, कैथल, कैथापकड़ी, कैथूदा, कोईलारी, कोटद्वार, कोटला, कोटा, कोठी, कोड़लहिया, कोथराखुर्द, कोलकाता, कोलिया, कोलीढेक, कोसीकला, कौड़िया, कौहाकुड़ा, कौलेती (नेपाल), खंजरपुर, खगड़िया, खजूरीरुण्डा, खजूरी, खड़गपुर, खडगवा, खरखो, खानकित्ता, खामगाँव, खामला, खुँटपला, खेंरोट, खुरपावड़ा, खुर्दा, खेतराजपुर, खेलदेशपाण्डेय, खैराचातर, खैराबाद, गंगातीकलाँ, गंगापुर सिटी, गंगाशहर, गड़कोट, गड़ेरा, गवलीपुरा, गरौठा, गाँधीनगर, गाजियाबाद, गाड़रवा, गिठीगाड़ा, गुंडरदेही, गुड़गाँव, गुड़ाकला, गुढ़ा, गुना, गुरुग्राम, गोकुल, गोकुलनगर, गोकुलेश्वर, गोछेड़ा, गोपालकृष्णनगर, गोपालगंज, गोपालगढ़, गोपेश्वर, गोरखपुर, गोलागोकरननाथ, गोवा, गोवार, गौड़ीहाट, गौड़ीहार, ग्वालियर, घघरा, घरैहली, घिंचलाय, घुघली,

घुघा चिहाई, चंडीगढ़, चंदौली, चंपावत, चक्कीरामपुर, चपकीबघार, चम्बा, चाँदखेड़ा, चिखलाकला, चिचोली, चित्तौड़गढ़, चित्रकूट, चिरंजीवपुर, चिराना, चिलौली, चिल्फी, चुरू, चुल्हार, चेबड़ी, चोरबड़, चौखा, चौखुटिया, चौधरी बसन्तपुर, चौरास, चौली, च्यौडी, छपट्टी, छापर, छेदियातरबगज, छोटालम्बा, जंघोरा, जगाधरी, जनापुर, जबलपुर, जयंती, जयपुर, जयप्रभानगर, जयरामपुर, जुलगाँव, जलगाँव जामोदा, जलपाईगुडी, जलोदाखाटयान जाँगलू, जाखड़ी, जॉजगीर, जाटनी, जामनगर, जामपाली, जुलगाँव, जैतगढ़, जैपुर, जैसलमेर, जोगीन्द्रनगर, जोधपुर, जोस्यूड़ा, जौलजीवी, ज्वालामुखी, झाँसी, झुन्झूनू, झूलाघाट, टिकरीखिलड़ा, टीकमगढ़, टोंकखुर्द, टोरडा, ठकुरापार, ठाणे, ठाणी, डड़िहथ, डबरा, डबोक, डीग, डीडवाना, डूँगरगढ़, ढाँगू, ढोलवना, तरीचर, तलेगाँव दशासर, तुगाँव, तेल्हारा, तोला, थाणे, थाना, दडीबा, दतियापुर, दमोह, दयापुर, दलसिंहसराय, दलोदारेल, दाँतारामगढ़, दिल्ली, दुमका, दुर्ग, देवरी, देवली, देशनोक, देहरादून, धनकौल, धनसार, धरमगढ़, धरवार, धर्मशाला, धापरी, धामणगाँव, धौलपुर, ध्रांगघा, ननौता, नगरगाँव, नन्हवाराकला, नयानगर, नयापारा (खुर्द), नयाबाजार, नयीदिल्ली, नरसिंहपुर, नरोही, नवादा, नांदन, नांदुरा, नाकोट, नामलोई, नागपुर, नानगाँव, नारायणगाँव, नारायणपुरा, नासिक, नाहक, निवाई, नीमकाथाना, नेवारी, नोखा, नोनीहाट, नोयडा, न्यू दिल्ली, न्हावी, पंडेर, पंडेश्वर, पंचपेड़ा, पगार, पटना, पटनासिटी, पट्टी, पट्टीचौरा, पड़रौना, परतवाड़ा, परली बैजनाथ, परोक, पलासी, पेडोंग, पाँडेयढौर, पालघर, पाली, पिछोर, पिथौरा, पिम्परी, पिलखुवा, पीठीपट्टी, पुणे, पुरुणावान्ध्रगोडा, पूना, पूर्णानगर, पूर्णिया, पौना, प्रयागराज, प्रीतमनगर, फतेहपुर चौरासी, फत्तूपुरकला, फागी, फूलपुररामा, बंगलूरु, बंगलौर, बम्बई, बलकराण्डा, बगसण्डा, बगदा, बघेरा, बच्छदा बटाला, बड़गरा शिवमंदिर, बड़ालू, बड़ोदरा, बनवसा, बनैल, बमोरा, बरखेड़ा पठानी, बरमान, बरोदा सागर, बलरामपुर, बलांगीर, बल्लभगढ़, बलिगाँव, बसान, बसाँव, बसई, बागपत, बाँगरोद, बारीडीह, बाँसवाड़ा, बाम्बे, बारीकेल, बलांगीर, बाराकोट (नेपाल), बालाघाट, बासोपट्टी, बासौली, बिगहिया, बिगहिया ब्यूर, बिटोरा (नेपाल), बिदराली, बिलखा, बीकानेर, बीदासर, बुरहानपुर, बुलन्दशहर, बूढ़ा-बूढ़ी थान्ह,, बूँदी, बेगूँ, बेरली खुर्द, बेलगाँव, बेलगाँवी, बेनियाकावास, बेलवरगंज, बैकुंठपुर, बैतूल, बैरछामंडी, बोकारो, बोरी अरव, बोरीवली, ब्यावर, भटिण्डा, भईन्दर, भटगाँव, भटेवरा, बाजार, भरतनगर, भरतपुर, भरसी, भलान, भवानीपुर, भांडूप (वेस्ट), भागलपुर, भाड़तू, भावनगर, भिण्डुवा, भिलाई, भिवण्डी, भीकमगाँव, भीखापुर, भीमदासपुर, भीलवाड़ा, भुवनेश्वर, भून्तर, भूरेवाला, भेडवन, भैंसड़ा, भोकरदन, भोपाल, भोपालपुरा, भ्रमरपुर, मंडी, मडूको, मथुरा, मदारपुर, मनमहेश, मलकापुर, मलँगवा (नेपाल), मलाँड, मलेनपुरवा, महलियावा, महादेवा, महासमुन्द, महेश्वर, महेशानी, माजिरकांडा, माधोपुर, मावली, मिश्रपुर, मीतली, मीरारोड, मीलवाँ, मुंढवा, मुंगेर, मुंगेली, मुंबई, मुजफ्फरपुर, मुरलीपुरा, मुरादाबाद, मुलड, मुस्तफाबाद, मुहेकर, मूड़िया, रामसर, मूडी, मेंड़ई, मेड़तारोड, मेरठ, मेहतापुर बासदेहरा, मोगा, मोरवण, मोरीजा, मोहम्मदी, मोहबा, मोहाली, मौजपुर, यमुनानगर, यवतमाल, यशोदानगर, येवदा, येवला, रठेरा, रतनगढ़, रतननगर, रतनपुर, रतनमहका, रतलाम, रत्नागरपुर, रन्नौद, रसिकपुर, रहली, राऊ, राजकोट, राजनांदगांव, राजापुरबड़ा, राजरूपपुर, राजाखेड़ा, राजाआहर, राणीसती मन्दिर, रामद्वारा, रामेश्वरकम्पा, रायगढ़, रायपुर, रायबरेली, रावेर, रुड़की, रूपनगर, रोहतक, रोहनी, रोहिणी, लक्ष्मणगढ़, लक्ष्मीनगर, लखनऊ, लखीमपुर खीरी,

लमतड़ा, लरछुट, लश्कर, लारौन, लालपुर, लावन, लिलुआ, लुधियाना, लुहासिंहा, लोसिंहा, लोहासिंहा, लोहरा, वगरेंठी, बडोदरा, वरोदासागर, वल्लभगढ़, वल्लभनगर, वसई, वागोसड़ा, वानासद्दी, वाराकला, वाराणसी, वास, विदिशा, विराटनगर, विशाखापट्टनम, विशाड़, विश्वेश्वरनगर, वीदासर, वुरहानपुर, वैकुंठपुर, वैशालीनगर, शामगढ़मंडी, शाहपुर, शाहपुर (मगरोन), शेगाँव, शोभासर, श्रीगंगानगर, श्रीडूँगरगढ़, संकीर्तन मण्डली (झूलाघाट), संघर, सतना, समस्तीपुर, सरथुआ, सरदमपिंडारा, सरावाँ, सवाई माधोपुर, ससना, सांडवा सांडवा, साउथसिटी, सागौनी, सापुआपल्ली, सालोन-बी., सावनेर, सिंगापुर, सिकन्दराबाद, सिकन्दराराऊ, सिकहुला, सिमरी, सिरजम, सिरपुर कागजनगर, सिरहौल, सिरेसादगाँव, सिरोही, सीनखेड़ा, सीपरीबाजार, सुंदरवाला, सुखसाल, सुखलिया, सुगवा, सुजानगढ़, सुठालिया, सुन्दरनगर, सुनगाँव, सुल्तानपुर, सूरत, सेमरामेडौल, सेमराहाट, सेंठा, सेहलंग, सैदपुर, सोनाला, सोनीपत, हरदा, हरसोरा, हराबाग, हरिद्वार, हल्लीखेड़ा, हल्लीखेड़ (बी), हातोद, हाथरस, हाथीदेह, हाबड़ा, हिंगोली, हिसार, हिगोलाकला, हुगली पानगोरे, हुबली, हुगलीपान गोरे, हुमायूँपुर, हैदराबाद, होशंगाबाद, होशियारपुर।

श्रीभगवन्नाम-जपकी महिमा

दो०—ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥ २५॥

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

दो०—नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥ २६॥

चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥
ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पूर्व० ४१।११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्‌के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्‌के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय भगवान्‌के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय—भगवान्‌की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पंचानबे करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं; उनके अनुसार तिरसठ करोड़, बयासी लाख, इकतीस हजार, तीन सौ मन्त्रके नाम-जप हुए हैं। भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंसे प्रार्थना है कि जपकी संख्यामें विशेष उत्साह दिखलायें, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें और वृद्धि हो सके। आशा है, अधिक उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष पंचानबे करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं० २०८०)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्‌के प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनांक ८।११।२०२२ ई०) मंगलवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०८० दिन-गुरुवार (दिनांक ६।४।२०२३)-को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम-पता, मोबाइल नम्बर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) **जापक महानुभावोंको प्रतिवर्ष श्रीभगवन्नाम-जपकी सूचना अवश्य दे देनी चाहिये।**

(१२) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग,
गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—
प्रेमप्रकाश लक्कड़
सम्पादक—'कल्याण'

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे। कलि न बिराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे॥
राम सुमिरत सब बिधि ही को राज रे। राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज रे॥
राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे। मनि लिये फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे॥
राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे। कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे॥
राम-नाम प्रेम-परमारथको सार रे। राम-नाम तुलसीको जीवन-अधार रे॥

[विनय-पत्रिका]

श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपनी स्थायी सदस्य-संख्या एवं नाम-पता (मोबाइल नम्बरसहित) साफ-साफ अक्षरोंमें प्रत्येक वर्ष लिखना चाहिये, जिससे उनके ग्राम/नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। —सम्पादक

कृपानुभूति

ईश्वर सबसे बड़ा चिकित्सक

अपने जीवनकी पाठशालामें, ईश्वरकी परम अहैतुकी कृपाका जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसको आप सबके साथ बाँटनेका प्रयास कर रहा हूँ। मुझे अपने जीवनके कई अवसरोंपर ईश्वरकी कृपानुभूतिका सौभाग्य मिला, जिसके कारण मेरे विचारोंमें आमूल परिवर्तन हुआ; फलस्वरूप मेरी मान्यताओं और मेरे सिद्धान्तोंमें भी परिवर्तन हुआ। इस संदर्भमें मेरा एक अनुभव इस प्रकार है—

मैं वर्ष १९७० में आयकर अधिकारी नागपुरके पदपर कार्यरत था। तब मेरी आयु केवल २५ वर्षकी थी। मेरी प्रथम सन्तान एक कन्या-रत्न थी, जो उस समय मात्र छ: मासकी थी। वह शिशुओंकी एक संघातिक व्याधिसे ग्रसित हो गयी। वहाँके सबसे बड़े डॉक्टरने विस्तृत परीक्षण करके बताया कि इस व्याधिका अभीतक कोई प्रभावशाली उपचार सम्भव नहीं हो पाया है, लेकिन फिर भी हम पूरा प्रयास करेंगे। दिनभर अथक परिश्रमके बाद भी कोई विशेष सुधार नहीं दिखा। रातको साढ़े आठ बजे डॉक्टरने मुझे कमरेसे बाहर ले जाकर कहा कि इस बच्चीके लिये कल सुबहका सूरज देखना बहुत कठिन प्रतीत होता है। आप अपने सम्बन्धियोंको ट्रंक कॉल कर दीजिये। मुझे आप कहेंगे तो पूरी रात्रि मैं अस्पतालमें ही रहूँगा, पर इस बच्चीको केवल ईश्वरीय चमत्कार ही बचा सकता है। यह सुनकर मैं कुछ समयके लिये मौन रहा। उसके बाद डॉक्टर साहबको यह कहकर विदा कर दिया कि मैं रातभर किसी चमत्कारके लिये प्रार्थना करूँगा और कल प्रात:काल आपसे फोनपर सम्पर्क करूँगा। अपनी पत्नीको डॉक्टरके साथ हुए वार्तालाप और सगे-सम्बन्धियोंको सूचना देनेके विषयमें कुछ नहीं बता सका कि कहीं अपनी पहली सन्तानकी शोचनीय स्थितिके बारेमें जानकर उसका धीरज न टूट जाय। मैंने बच्चीको गोदमें लिया और पत्नीसे कहा कि भगवान् चाहेगा तो कल सुबहतक ठीक हो जायगी। तुम भी प्रार्थना करो और मैं भी मनसे कातर होकर बच्चीके स्वास्थ्य-लाभके लिये उनको पुकारूँगा। पर जबतक बहुत आवश्यकता न हो, तबतक मुझे उठाना नहीं।

इसके बाद मैंने कुछ समयतक रामरक्षास्तोत्रका पाठ किया। पर दु:ख इतना तीव्र था कि बार-बार श्लोक भूलने लगा। अचानक मुझे पूज्य भाईजीका उपदेश स्मरण हो आया कि जब ऐसी परिस्थिति आ जाय कि व्यक्ति मृत्युतुल्य कष्टसे जूझ रहा हो तो फिर ईश्वरको किसी प्रकारसे सम्बोधित किया जा सकता है, किसी स्तोत्र या श्लोकके द्वारा नहीं। क्योंकि मेरे पूज्य गुरुदेवके भी इष्टदेव राघवेन्द्र सरकार ही थे, मैं गुरु महाराजसे रो-रोकर विनती करने लगा। मैंने कातर होकर उच्च स्वरमें पुकारना शुरू किया 'हे गुरुदेव! मेरी बच्चीको जीवनदान दीजिये।' कुछ देरके बाद मेरे कानोंमें प्रार्थनाके स्वर भी आने बन्द हो गये। कबतक यह आर्तनाद चला; मुझे कुछ पता नहीं, पर जब मैं बाह्य चेतनामें वापस आया, तो मेरे कानोंमें मेरी पत्नीका स्वर सुनायी पड़ा कि आप आँखें खोलिये। आपके आँसुओंसे इस बच्चीका कपड़ा पूरी तरह भींग गया है। आँखें खुलते ही मुझे अप्रतिम आनन्दकी प्राप्ति हुई। भक्तवत्सल, करुणावरुणालय प्रभु श्रीरामकी परम अहैतुकी कृपाके दर्शन हुए, और मेरे गुरुदेव महाराजके प्रसादके रूपमें मेरी बच्चीको नया जीवन मिला।

मेरी बच्चीकी गरदन सीधी हो चुकी थी और वह मृत्युके द्वारसे वापस आकर शान्तिसे मेरी गोदमें सो रही थी। पत्नीने बताया कि आप कह रहे थे कि 'गुरुजी अभी मेरे सामने खड़े थे। वे कहाँ चले गये!' मैंने उसको बताया कि मेरी आँखोंके सामने तीव्र प्रकाश आया और मेरे सामने गुरुदेव प्रकट हुए। उन्होंने कहा—'बेटे! रो मत! मैं इस बच्चीको अपनी ओरसे जीवनदान देता हूँ।' यह सुनते ही मैं गद्‌गद हो गया। मैं तुरंत उठकर उनके चरणस्पर्श करनेके लिये बढ़ा और मेरी आँखें खुल गयीं। यह था मेरे प्रभुकी कृपाका चमत्कार! डॉक्टर साहबने इसको स्वीकार किया और नास्तिकसे आस्तिक बन गये। मेरी बच्ची अब अपने पति और दो पुत्रियोंके साथ सुखी जीवन व्यतीत कर रही है। इस अनुभवसे मेरी ईश्वरमें श्रद्धा और अटल हो गयी। —**हरिओमकुमार श्रीवास्तव**

[लेखक मेरे मित्र अवकाशप्राप्त अध्यक्ष केन्द्रिय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, नई दिल्ली हैं—**सम्पादक**]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

दान धनसे नहीं मनसे होता है

एक बुजुर्ग शिक्षिका भीषण गर्मियोंके दिनमें बसमें सवार हुईं। पैरोंके दर्दसे वे बेहाल थीं, लेकिन बसमें सीट न देखकर जैसे-तैसे खड़ी हो गयीं।

बसने कुछ ही दूरी तय की थी कि एक उम्रदराज औरतने बड़े सम्मानपूर्वक आवाज दी—'आ जाइये मैडम, आप यहाँ बैठ जायँ' कहते हुए उसने उन्हें अपनी सीटपर बैठा दिया। खुद वह गरीब-सी औरत बसमें खड़ी हो गयी। मैडमने दुआ दी—'बहुत-बहुत धन्यवाद, मेरी बुरी हालत थी सच में।'

उस गरीब महिलाके चेहरेपर एक सुकूनभरी मुसकान फैल गयी।

कुछ देर बाद शिक्षिकाके पासवाली सीट खाली हो गयी। लेकिन महिलाने एक और महिलाको, जो एक छोटे बच्चेके साथ यात्रा कर रही थी और मुश्किलसे बच्चेको ले जानेमें सक्षम थी, को सीटपर बिठा दिया। अगले पड़ावपर बच्चेके साथ महिला भी उतर गयी, थोड़ी देर बाद सीट खाली हो गयी, लेकिन नेकदिल महिलाने बैठनेका लालच नहीं किया। बसमें चढ़े एक कमजोर बूढ़े आदमीको बैठा दिया, जो अभी-अभी बसमें चढ़ा था। थोड़ी देरमें सीट फिरसे खाली हो गयी। बसमें अब गिनी-चुनी सवारियाँ ही रह गयी थीं। अब उस अध्यापिकाने महिलाको अपने पास बिठाया और पूछा—'सीट कितनी बार खाली हुई, लेकिन आप दूसरे लोगोंको ही बैठाती रहीं, खुद नहीं बैठीं, क्या बात है?'

महिलाने कहा—'मैडम! मैं एक मजदूर हूँ, मेरे पास इतने पैसे नहीं हैं कि मैं कुछ दान कर सकूँ। तो मैं क्या करती हूँ कि कहीं रास्तेसे पत्थर उठाकर एक तरफ कर देती हूँ। कभी किसी जरूरतमन्दको पानी पिला देती हूँ। कभी बसमें किसीके लिये सीट छोड़ देती हूँ। फिर जब सामनेवाला मुझे दुआएँ देता है, तो मैं अपनी गरीबी भूल जाती हूँ। दिनभरकी थकान दूर हो जाती है। और-तो-और जब मैं दोपहरमें रोटी खानेके लिये बैठती हूँ ना बाहर बेंचपर, तो ये पंछी-चिड़िया पास आकर बैठ जाते हैं, तो इनके लिये रोटी डाल देती हूँ, छोटे-छोटे टुकड़े करके। जब वे खुशीसे चहचहाते हैं, तो उन भगवान्‌के जीवोंको देखकर मेरा पेट भर जाता है। पैसा न सही, सोचती हूँ दुआएँ तो मिल ही जाती हैं ना मुफ्तमें। फायदा ही है ना और हमें लेकर क्या जाना है यहाँसे।'

शिक्षिका अवाक् रह गयी। एक अनपढ़-सी दिखनेवाली महिला इतना बड़ा पाठ जो पढ़ा गयी थी उसे। अगर दुनियामें आधे लोग भी ऐसी सोचको अपना लें तो धरती स्वर्ग बन जायगी। [**सोशल मीडियासे साभार**]

(२)

कर्मफल

एक शहरसे लगी हुई पहाड़ियोंपर एक पुजारीजी रहते थे। एक दिन उन्हें विचार आया कि पहाड़ीसे गिरे हुए पत्थरोंको धार्मिक स्थलका रूप दे दिया जाय। इसे कार्यरूपमें परिणित करनेके लिये उन्होंने एक पत्थरको तराशकर मूर्तिका रूप दे दिया और आस-पासके गाँवोंमें मूर्तिके स्वयं प्रकट होनेका प्रचार-प्रसार करवा दिया।

इससे ग्रामीण श्रद्धालुजन वहाँपर दर्शन करने आने लगे। इस प्रकार बातों-बातोंमें ही इसकी चर्चा शहरभरमें होने लगी कि एक धार्मिक स्थानका उद्‌गम हुआ है। इस प्रकार मन्दिरमें दर्शनके लिये लोगोंकी भारी भीड़ आने लगी। वे वहाँपर मन्नतें माँगने लगे। अब श्रद्धालुजनोंद्वारा चढ़ायी गयी धनराशिसे पुजारीजीकी तिजोरी भरने लगी और उनका जीवन विलासिताओंसे परिपूर्ण हो गया। मन्दिरमें लगनेवाली भीड़से आकर्षित होकर नेतागण भी वहाँ पहुँचने लगे और क्षेत्रके विकासका सपना दिखाकर अपनी लोकप्रियता बढ़ानेका प्रयास करने लगे।

कुछ वर्षों बाद पुजारीजी अचानक बीमार पड़ गये। जाँचके उपरान्त पता चला कि वे कैंसर-जैसे घातक रोगकी अन्तिम अवस्थामें हैं। यह जानकर वे फूट-फूटकर रोने लगे और भगवान्‌को उलाहना देने लगे कि हे प्रभु! मुझे इतना कठोर दण्ड क्यों दिया जा रहा है, मैंने तो जीवनभर आपकी सेवा की है?

उनका जीवन बड़ी पीड़ादायक स्थितिमें बीत रहा था। एक रात अचानक ही उन्होंने स्वप्न देखा कि प्रभु उनसे कह रहे हैं कि तुम किस बातकी उलाहना दे रहे हो? याद करो, एक बालक भूखा-प्यासा मन्दिरकी शरणमें आया था, अपने उदरपूर्तिके लिये विनम्रतापूर्वक दो रोटी माँग रहा था। परंतु तुमने उसकी एक ना सुनी और उसे दुत्कारकर भगा दिया। एक दिन एक वृद्ध बरसते हुए पानीमें मन्दिरमें आश्रय पानेके लिये आया था। उसे मन्दिर बन्द होनेका कारण बताते हुए तुमने बाहर कर दिया था। गाँवके कुछ विद्यार्थीगण अपनी शालाके निर्माणके लिये दानहेतु निवेदन करने आये थे। उन्हें शासकीय योजनाओंका लाभ लेनेका सुझाव देकर तुमने विदा कर दिया था। मन्दिरमें प्रतिदिन जो दान आता है, उसे जनहितमें खर्चा न करके, यह जानते हुए भी कि यह जनताका धन है, तुम अपनी तिजोरीमें रख लेते हो। तुमने एक विधवा महिलाके अकेलेपनका फायदा उठाकर उसे अपनी इच्छापूर्तिका साधन बनाकर उसका शोषण किया और बदनामीका भय दिखाकर उसे चुप रहनेपर मजबूर किया।

तुम्हारे इतने दुष्कर्मोंके बाद तुम्हें मुझे उलाहना देनेका क्या अधिकार है। तुम्हारे कर्म कभी भी मानवताके अनुकूल नहीं रहे। जीवनमें हर व्यक्तिको उसका कर्मफल भोगना ही पड़ता है। इन्हीं गलतियोंके कारण तुम्हें इसका दण्ड भोगना ही पड़ेगा। पुजारीजीकी आँखें अचानक ही खुल गयीं और स्वप्नमें देखे गये दृश्य मानो यथार्थमें उनकी आँखोंके सामने घूमने लगे और पश्चात्तापके कारण उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगी।—**राजेश माहेश्वरी**

(३)

परोपकारका प्रत्यक्ष फल

बात दो वर्ष पुरानी है। नीवोंकी खुदाई होनेसे उनमें पानी भरा था। रात ९ या १० बजेके करीब मेरे पोतेने कुत्तेके रोनेकी आवाज सुनी तो दौड़कर मेरे पास आया और अपने दादासे बोला—'दादा-दादा! शायद कुत्तेका बच्चा गड्ढेमें गिर गया है और वहींसे यह आवाज आ रही है।'

दादाजी थके थे, सो कह दिया 'तू एवं तेरे पापा जाकर निकाल दो।' अँधेरी रात एवं गड्ढोंमें ३-३ फीट पानी भरा होनेसे टार्चकी रोशनीमें उसे निकालनेमें काफी दिक्कत हो रही थी। जैसे-तैसे सीढ़ी लगाकर घण्टेभरकी मशक्कतके बाद उसे बाहर निकाला गया। वह सँभल पाता तभी अन्य कुत्तोंके भौंकनेसे डरकर पुनः गड्ढेमें गिर गया। थोड़ी देरके आरामसे दादाजी भी तरोताजा महसूस करने लगे। बच्चे अभीतक नहीं लौटे थे, सो वे भी उठकर वहीं जा पहुँचे। दो-तीन टॉर्चकी लाइटोंकी मददसे, कुछ पुचकारकर एवं ब्रेड आदि दिखाकर उसे पुनः बाहर निकाला एवं थोड़ी दूर ले जाकर छोड़ दिया।

तीनोंकी आवाज सुन मैं भी उसका हालचाल पूछने पहुँची तो ये बोले—'अरे! कुत्तेको तो निकाल दिया, तू मेरे बिस्तरपर देख।'

मैं वहाँ पहुँची तो सन्न रह गयी, सीलिंग फैन टूटकर दोनों तकियोंके बीच पड़ा था। आज जीवदयाका प्रमाण साक्षात् मिल चुका था, अगर वहाँ सोये होते, तो हमारा क्या हाल होता?

ईश्वरका लाख-लाख शुक्र है कि कुत्तेको माध्यम बनाकर उन्होंने हमें बचा लिया था।—**राधा पालीवाल**

(४)

हरिनाम-जपकी महत्ता

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई॥

गोस्वामी तुलसीदासजीका यह कथन पूर्णरूपसे सत्य है। ऐसा मैंने अपने जीवनमें पाया। मैं प्रयागराज, उत्तरप्रदेशमें रहती हूँ। मेरी आयु पचहत्तर वर्ष है। लगभग सोलह वर्षोंसे मुझे गठिया रोगने जकड़ रखा है। मेरे हाथोंमें और हाथोंकी उँगलियोंमें बहुत सूजन थी। पैरके घुटनोंमें भी बहुत दर्द रहता था। जयपुरका कृत्रिम पैर बनानेवाले प्रसिद्ध डॉक्टरको दिखलाया था। वे हमारी सम्बन्धी भी थीं। सब देखकर उन्होंने कहा था कि दवा खाइये और व्यायाम करिये। विशेष बात जो उन्होंने बतायी थी, वह यह थी कि किसी भी कार्यके लिये यह मत सोचिये कि मैं नहीं कर सकती हूँ। लगातार प्रयत्न करते रहिये। एक-दो बार नहीं कर पा रही हैं, तो दसवीं बार प्रयत्न करनेपर अवश्य कर पायेंगी।

हाथोंमें सूजन होनेके कारण मैं कोई काम नहीं कर पा रही थी। कुछ लिखना भी हो तो नहीं लिख पा रही

थी। इस कारण जीवनसे बहुत हताश एवं दुखी थी। एक व्यक्ति 'राम-नाम' की पुस्तिका दे गया, लिखनेके लिये। मैं लिख नहीं पा रही थी। फिर हरिनामकी महिमाका ध्यानकर और उन डॉक्टर साहबकी बात स्मरणकर धीरे-धीरे टेढ़े-मेढ़े अक्षरोंमें लिखना आरम्भ किया। पहले सप्ताह प्रतिदिन आधा पृष्ठ ही लिख पाती थी। फिर दूसरे सप्ताहसे पूरा पृष्ठ लिखने लगी। लिखावटमें भी सुधार आया। मनमें जप भी करती जाती थी। इसके बाद मनमें आया कि एक बड़े रजिस्टरमें हरिके विभिन्न नामोंको लिखूँ। प्रयत्न करती रही। वर्षमें चार बड़े त्योहार होते हैं, जब भाइयोंको टीका-राखी भेजनी होती है। टीकाके साथ मैं अपने चारों भाइयोंको पत्र भी अवश्य भेजती थी, चाहे टेढ़े-मेढ़े अक्षरोंमें लिखा ही क्यों न हो।

'कल्याण'के एक अंकमें मन्त्र-जपके लिये निम्नलिखित सोलह अक्षरोंका मन्त्र बताया गया था—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

अन्त:करणसे प्रेरणा हुई कि काम तो कुछ कर नहीं पा रही हूँ, मन्त्र-जपका ही संकल्प ले लूँ। समय भी बीतेगा। सो पाँच माला प्रतिदिन जपनेका संकल्प लिया। 'कल्याण'में लिखा था कि लेटकर, बैठकर, मालाके द्वारा या उँगलियोंके पोरोंसे ही यह मन्त्र जपा जा सकता है। एक-दो माला तुलसीकी मालासे जप लेती थी। पाँच मालाकी संख्याके बराबर जप करना ही था। बाकी उँगलियोंके पोरोंसे ही जपती थी।

कार्तिक पूर्णिमासे चैत्रमासकी पूर्णिमाके आते-आते हाथोंमें और हाथोंकी उँगलियोंमें आश्चर्यजनक लाभ हुआ। सूजन कम होती गयी। फिर धीरे-धीरे घरका काम भी करने लगी। कई पुस्तकें भी लिखीं। मैंने उन्हीं हाथोंसे कई स्वेटर भी बुने। कहाँ एक-दो सलाई बुनना भी दूभर था।

स्वेटर बुनते समय भी मैं भगवान्‌के नामका जप मन-ही-मन करती रहती थी। यह सब ईश्वरके नामका प्रताप है और उन्हींकी अपार कृपा है, ऐसा मैं अन्तर्मनसे मानती हूँ। जप जीवनपर्यन्त करना चाहती हूँ। अभी भी बैठती या लेटती हूँ तो उँगलियाँ अनायास ही जप करना प्रारम्भ कर देती हैं।—**शीला अग्रवाल**

(५)

अशुभ घटनाका संकेत

बात १३ फरवरी सन् १९४८ ई०की है। स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी और महाकवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान अपने बड़े बेटेके साथ अपनी नयी कारसे शिक्षा विभागकी एक मीटिंगमें शामिल होनेके लिये नागपुर जानेकी तैयारी कर रही थीं। उस दिन शामसे ही घरके आस-पास कुत्तों और सियारोंने रोना शुरू कर दिया। उनके पति श्रीलक्ष्मणसिंहजी, जो स्वयं भी स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी थे, कभी इन सब बातोंपर विश्वास नहीं करते थे, फिर भी न जाने क्यों वे सुभद्राजीसे बार-बार कहने लगे कि तुम अपना नागपुर जानेका कार्यक्रम रद्द कर दो। कारण पूछनेपर उन्होंने बस, यही बताया कि जानवरोंका रोना बड़ा मनहूस लग रहा है और इससे उनकी तबीयत घबरा रही है। यह बात सुनकर सुभद्राजी पहले तो खूब हँसीं, फिर बोलीं कि आप कबसे ऐसे अन्धविश्वासोंमें विश्वास करने लगे? ऐसा कहकर दूसरे ही दिन वसन्तपंचमीको लौटनेका वायदा करके १४ फरवरीको वे चली गयीं। दिनभर नागपुरमें काम किया और दूसरे दिन १५ फरवरीको अपने घर जबलपुरके लिये रवाना हो गयीं। नागपुरसे अस्सी किलोमीटर दूर जाकर उनकी कार एक वृक्षसे टकरा गयी। कारमें किसीको खरोंचतक नहीं आयी। सुभद्रा कुमारी चौहानको भी कहीं चोट नहीं लगी, पर उनकी मृत्यु हृदयगति रुकनेसे हो गयी।

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि अन्धविश्वास कहकर किसी तथ्यको हँसीमें उड़ा देना एक बात है और उसमें सन्निहित सत्यको जानना तथा उसका उपयोग करना दूसरी बात। पशु-पक्षियोंको भविष्यमें घटनेवाली घटनाओंका सूक्ष्म ज्ञान होता है, शकुन-शास्त्र इसी प्रकारकी बातोंपर आधारित है, अत: इन्हें एकदमसे खारिज कर देना उचित नहीं है; क्योंकि इनके पीछे दीर्घकालीन अनुभवरूपी सूक्ष्म विज्ञान है।—**उमेश प्रसाद सिंह**

मनन करने योग्य

धर्मपालनमें बहानेबाजी नहीं करनी चाहिये

एक समयकी बात है, लुटेरोंने किसी ब्राह्मणकी गौएँ लूट लीं और उन्हें लेकर भागने लगे। ब्राह्मणको बड़ा क्रोध आया और वह इन्द्रप्रस्थमें आकर पाण्डवोंके सामने करुण-क्रन्दन करने लगा। ब्राह्मणने कहा कि 'पाण्डवो! तुम्हारे राज्यमें दुष्टात्मा और क्षुद्र लुटेरे मेरी गौएँ छीनकर बलपूर्वक लिये जा रहे हैं। तुम दौड़कर इन्हें बचाओ। जो राजा प्रजासे कर लेकर भी उसकी रक्षाका प्रबन्ध नहीं करता, वह निस्सन्देह पापी है। मैं ब्राह्मण हूँ। गौओंका छिन जाना मेरे धर्मका नाश है। तुम्हें उचित है कि इस समय तुम पूरी शक्तिसे मेरी गौओंकी रक्षा करो।'

अर्जुनने ब्राह्मणका करुण-क्रन्दन सुनकर उन्हें ढाढ़स बँधाया, परंतु उनके सामने अड़चन यह थी कि जिस घरमें राजा युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ बैठे हुए थे, उसी घरमें उनके अस्त्र-शस्त्र थे। नियमानुसार अर्जुन उस घरमें नहीं जा सकते थे। एक ओर कौटुम्बिक नियम, दूसरी ओर ब्राह्मणकी करुण पुकार। अर्जुन बड़े असमंजसमें पड़ गये। उन्होंने सोचा कि 'ब्राह्मणका गोधन लौटाकर आँसू पोंछना मेरा निश्चित कर्तव्य है। यदि मैं इसकी उपेक्षा कर दूँगा तो राजाको अधर्म होगा, हमलोगोंकी निन्दा होगी और पाप भी लगेगा। दूसरी ओर प्रतिज्ञा-भंग करनेसे भी पाप लगेगा, वनमें जाना पड़ेगा। अच्छी बात है। मैं ब्राह्मणकी रक्षा करूँगा। कोई रुकावट हो तो रहे। नियम-भंगके कारण कितना भी कठिन प्रायश्चित्त क्यों न करना पड़े, चाहे प्राण ही क्यों न चले जायँ, इस दीन ब्राह्मणके गोधनकी रक्षा करना मेरा धर्म है और वह मेरे जीवनकी रक्षासे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।'

अर्जुन राजा युधिष्ठिरके घरमें निस्संकोच चले गये। राजासे अनुमति लेकर धनुष उठाया और आकर ब्राह्मणसे बोले, 'ब्राह्मणदेवता! जल्दी चलो। अभी वे दुष्ट अधिक दूर नहीं गये हैं। उनसे गोधनका उद्धार कर लायें।' थोड़ी ही देरमें अर्जुनने बाणोंकी बौछारसे लुटेरोंको मारकर गौएँ ब्राह्मणको सौंप दीं। नागरिकोंने अर्जुनकी बड़ी प्रशंसा की, कुरुवंशियोंने अभिनन्दन किया। अर्जुनने युधिष्ठिरके पास जाकर कहा, 'भाईजी! मैंने आपके एकान्तगृहमें जाकर प्रतिज्ञा तोड़ी है। इसलिये मुझे बारह वर्षतक वनवास करनेकी आज्ञा दीजिये; क्योंकि हमलोगोंमें ऐसा नियम बन चुका है।' एकाएक अर्जुनके मुँहसे ऐसी बात सुनकर युधिष्ठिर शोकमें पड़ गये। उन्होंने व्याकुल होकर अर्जुनसे कहा, 'भैया! यदि तुम मेरी बात मानते हो तो मैं जो कहता हूँ, सुनो। यदि तुमने नियमभंग किया भी है तो उसे मैं क्षमा करता हूँ। मेरे अन्त:करणमें उससे तनिक भी दु:ख नहीं हुआ, तुमने तो बहुत अच्छा काम किया। बड़ा भाई स्त्रीके साथ बैठा हो, तो वहाँ छोटे भाईका जाना अपराध नहीं है। छोटा भाई स्त्रीके साथ बैठा हो, तो वहाँ बड़े भाईको नहीं जाना चाहिये। तुम वनवासका विचार छोड़ दो। न तो तुम्हारे धर्मका लोप हुआ है और न मेरा अपमान।' अर्जुनने कहा, 'आप ही कहते हैं कि धर्म-पालनमें बहानेबाजी नहीं करनी चाहिये। मैं शस्त्र छूकर सच-सच कहता हूँ कि अपनी सत्य प्रतिज्ञाको कभी नहीं तोड़ूँगा।' अर्जुनने वनवासकी दीक्षा ली और बारह वर्षतक वनवास करनेके लिये चल पड़े।

[महाभारत]

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

'चित्रमय श्रीदुर्गासप्तशती' (कोड 2304) [ग्रंथाकार, हिन्दी अनुवाद-सहित, चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर] जिज्ञासु पाठकोंकी विशेष माँगपर चित्रमय श्रीमद्भगवद्गीता (**कोड 2267**) एवं चित्रमय श्रीरामचरितमानस (**कोड 2295**) की तरह अब 100 से अधिक आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ प्रकाशित की गयी है। मूल्य ₹ 450

श्रीदुर्गासप्तशत्याम्

देवताओंद्वारा देवीका स्तवन

तुम सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणोंका आधार तथा सर्वगुणमयी हो। नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ ११॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १२॥

शरणमें आये हुए दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली तथा सबकी पीड़ा दूर करनेवाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ १२॥

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १३॥

नारायणि! तुम ब्रह्माणीका रूप धारण करके हंसोंसे जुते हुए विमानपर बैठती तथा कुशमिश्रित जल छिड़कती रहती हो। तुम्हें नमस्कार है॥ १३॥

त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १४॥

प्र० ति० 20-09-2022

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—देवोपासनाके महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
	भगवान् श्रीगणपति	
657	श्रीगणेश-अङ्क	200
2024	श्रीगणेशस्तोत्ररत्नाकर	45
	भगवान् शिव	
2223-2224	श्रीशिवमहापुराण-सटीक, दो खण्डोंमें सेट	740
1468	सं० शिवपुराण (विशिष्ट सं०)	350
789	सं० शिवपुराण	300
1985	लिंगमहापुराण-सटीक	300
2020	शिवमहापुराणमूलमात्रम्	350
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर	50
1627	रुद्राष्टाध्यायी (सानुवाद)	45
1954	शिव-स्मरण	15
563	शिवमहिम्नःस्तोत्र	8
228	शिवचालीसा (लघु आकारमें भी)	5
230	अमोघ शिवकवच	5
	भगवान् विष्णु	
48	श्रीविष्णुपुराण (सटीक)	200
1364	श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी)	120
819	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (शांकरभाष्य)	50
1801	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (शांकरभाष्य) (हिन्दी-अनुवादसहित)	12
225	गजेन्द्रमोक्ष	5
229	श्रीनारायणकवच	5
1367	श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा	20
	भगवान् श्रीकृष्ण	
1951-1952	भागवतमहापुराण-सटीक बेड़िआ, दो खण्डोंमें सेट	1200
571	श्रीकृष्णलीला-चिन्तन	200
517	गर्ग-संहिता	180
49	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	150
50	पद-रत्नाकर	150
62	श्रीकृष्णबालमाधुरी	40
555	श्रीकृष्णमाधुरी	40
547	विरह-पदावली	40
864	अनुराग-पदावली	40
1927	जीवन-संजीवनी	60
1862	श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्र (हिन्दी-अनुवाद)	20
1748	संतानगोपालस्तोत्र	10
	भगवान् श्रीराम	
2295	चित्रमय श्रीरामचरितमानस-सटीक ग्रन्थाकार	1600
574	योगवासिष्ठ	220
103	मानस-रहस्य-सजिल्द	70
2151	सचित्र रामरक्षास्तोत्रम् बेड़िया, पुस्तकाकार	15
	श्रीहनुमान्जी	
42	हनुमान-अङ्क—परिशिष्टसहित	230
185	भक्तराज हनुमान्	10
2121	सचित्र हनुमानचालीसा बेड़िया, पुस्तकाकार	15
	महाशक्ति भगवती	
1897-1898	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण-सटीक, दो खण्डोंमें सेट	600
1133	सं० देवीभागवत	350
41	शक्ति-अङ्क	250
1774	श्रीदेवीस्तोत्ररत्नाकर	45
2003	शक्तिपीठदर्शन	25
	भगवान् सूर्य	
791	सूर्याङ्क	170
211	आदित्यहृदयस्तोत्र	5

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

अयोध्या-माहात्म्य (कोड 2302)—मुक्तिदायिनी पुरियोंमें श्रीअयोध्याका विशेष स्थान है। 'रुद्रयामलतन्त्र' एवं 'श्रीस्कन्दपुराण'में अयोध्याजीकी बड़ी महिमा बतायी गयी है। इन्हीं दोनों ग्रन्थोंसे सामग्री लेकर इसे सानुवाद प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें श्रीअयोध्याका दिव्यस्वरूप, सरयूजीकी उत्पत्ति, अयोध्यास्तोत्र, द्वादश पुण्यवन, चौदह गुप्त-स्थल, अरण्य, मन्दिरों, तीर्थों, कुण्डों, पर्वतों, घाटोंका माहात्म्य तथा अयोध्याकी होनेवाली परिक्रमाओं एवं विभिन्न उत्सवोंका बहुत ही सरल, सरस एवं मनोरम चित्रण किया गया है। आशा है जिज्ञासु एवं प्रेमीस्वजन विशेष लाभान्वित होंगे। मूल्य ₹100

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।

gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005

book.gitapress.org/gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)